दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

<u>सुरक्षित तिथि: 06.12.2024</u>

<u>उद्घोषित तिथि: 24.02.2025</u>

नि.या. 93/2019

EX(EX.P. 93/2019)

डिस्कवरी ड्रिलिंग पी.टी.ई. लिमिटेड .....डिक्री धारक

द्वारा : श्री तन्मय मेहता, श्री असीम चतुर्वेदी, श्री करण गुप्ता और सुश्री फाल्गुनी निगम, अधिवक्तागण।

बनाम

प्रमोद कुमार व अन्य .....निर्णीत देनदार

द्वारा : श्री राकेश टिकू, वरिष्ठ अधिवक्ता सह सुश्री अर्पण वधावन, श्री संदीप कुमार और श्री देवाशीष मिश्रा, अधिवक्तागण।

कोरमः

माननीय न्यायमूर्ति श्री नवीन चावला

<u>निर्णय</u>

1. "यह याचिका सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'सी.पी.सी.') की धारा 44क, आदेश XXI नियम 10 तथा धारा 151 के अंतर्गत दायर की गई है, जिसमें दिनांक 31.05.2019 को सिंगापुर गणराज्य के सिंगापुर अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक न्यायालय (आगे 'सिंगापुर अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक

न्यायालय'(सीआईसीसी) कहा जाएगा) द्वारा वाद सं. 1/2017 में पारित निर्णय को लागू करने की मांग की गई है।

2. संक्षिप्त पृष्ठभूमि के रूप में, जिन तथ्यों में वर्तमान निष्पादन याचिका दायर की गई है, उनका विवरण निम्नानुसार है:

2.1 याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जिंदल ड्रिलिंग एंड इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड (आगे 'जे.डी.आई.एल.' कहा जाएगा), जो भारत के विधानों के अधीन अधिनियमित एक कंपनी है, ने ऑयल एंड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन (आगे 'ओ.एन.जी.सी.' कहा जाएगा) के साथ *ऑफ़शोर* ड्रिलिंग सेवाएँ प्रदान करने हेतु एक अनुबंध किया।

2.2 उक्त सेवाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से, याचिकाकर्ता, जो सिंगापुर के विधानों के अधीन अधिनियमित तथा जे.डी.आई.एल. का एक संयुक्त उपक्रम है, ने उस रिग का क्रय किया जिसे जे.डी.आई.एल. को चार्टर हायर पर दिया जाना था।

2.3 चूँकि रिग को मरम्मत कार्य की आवश्यकता थी, याचिकाकर्ता ने एक समझौता AKRO ग्रुप डी.एम.सी.सी. (आगे 'AKRO' कहा जाएगा), जो दुबई, संयुक्त अरब अमीरात के विधानों के अधीन अधिनियमित एक कंपनी है, इसके साथ किया। उक्त कंपनी को याचिकाकर्ता को विशेषीकृत परियोजना प्रबंधन (एस.पी.एम.) सेवाएँ

प्रदान करनी थीं, जो याचिकाकर्ता के रिग के सक्रियण और गतिशीलन हेतु आवश्यक थीं।

2.4 याचिकाकर्ता का मामला यह है कि प्रत्यर्थीगण उस समय जे.डी.आई.एल. के कर्मचारी थे और उपर्युक्त समझौते के प्रयोजनार्थ याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे थे। यह भी दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि के रूप में अपनी क्षमता में, प्रत्यर्थीगण को AKRO के प्रतिनिधिगण के साथ मिलकर परियोजना हेतु सामग्री, उपकरण और सेवाओं के लिए उद्धरण प्राप्त करने तथा सर्वोत्तम मूल्य पर वार्ता करने की आवश्यकता थी।

2.5 याचिकाकर्ता का दावा है कि AKRO द्वारा अपने संविदात्मक दायित्वों को पूरा करने में हुई देरी के कारण रिग को जे.डी.आई.एल. को समय पर उपलब्ध नहीं कराया जा सका। याचिकाकर्ता का यह भी दावा है कि तत्पश्चात याचिकाकर्ता और AKRO के बीच, विशेष रूप से चालानों के भुगतान के संबंध में, विवाद और मतभेद उत्पन्न हुए और इसी समय दोनों प्रत्यर्थीगण ने अप्रत्याशित रूप से याचिकाकर्ता से त्यागपत्र दे दिया।

2.6 दिनांक 13.12.2016 को, AKRO ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध सिंगापुर उच्च न्यायालय के समक्ष वसूली कार्यवाही आरंभ की,

जिसमें उपर्युक्त समझौते के अंतर्गत परियोजना प्रबंधन शुल्क और व्ययों की कथित बकाया राशि का दावा किया गया। यह भी दावा किया गया है कि प्रत्यर्थीगण ने AKRO की ओर से अपने साक्ष्य के हलफनामे दाखिल किए और AKRO के व्यय पर सिंगापुर की यात्रा भी की ताकि AKRO द्वारा किए गए दावे का समर्थन कर सकें।

2.7 तत्पश्चात मामला सिंगापुर अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक न्यायालय (एस.आई.सी.सी.) को स्थानांतरित किया गया, जिसके समक्ष याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.01.2017 को अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और अपना प्रतिरक्षा विवरण दाखिल किया, जिसमें AKRO के प्रति किसी भी देयता से इंकार किया गया, तथा समझौते के अंतर्गत हर्जाने और अन्य दावों की मांग करते हुए प्रत्यावेदन भी दाखिल किया।

2.8 प्रत्यावेदन में द्वितीय संशोधन के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थीगण को प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित किया, यह आरोप लगाते हुए कि उन्होंने अनुबंध का उल्लंघन किया, न्यासीय दायित्वों का उल्लंघन किया तथा चालानों के संबंध में धोखाधड़ी और जालसाजी की। याचिकाकर्ता ने आगे यह भी दावा किया कि

प्रत्यर्थीगण ने AKRO और उसके प्रतिनिधिगण के साथ मिलकर याचिकाकर्ता को धोखा देने हेतु षड्यंत्र और सांठगांठ की।

2.9 याचिकाकर्ता का दावा है कि तत्पश्चात उसने प्रत्यर्थीगण को न केवल प्रत्यावेदन पर एस.आई.सी.सी. द्वारा जारी नोटिसों के तामील की, बल्कि एस.आई.सी.सी. को भेजे गए ईमेलों में प्रत्यर्थीगण को अंकित कर सभी आगामी कार्यवाहियों से अवगत भी कराया। तथापि, प्रत्यर्थीगण ने एस.आई.सी.सी. के समक्ष उपस्थिति दर्ज नहीं कराई और एस.आई.सी.सी. ने दिनांक 31.05.2019 को विषयगत निर्णय पारित किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित शर्तें सम्मिलित थीं:

> *—174. निर्णय डिस्कवरी ड्रिलिंग* पी.टी.ई. *लिमिटेड के पक्ष में उसके दावों के शेष भाग पर प्रत्येक AKRO ग्रुप डी.एम.सी.सी., प्रथम प्रति-प्रतिवादी, परमोद कुमार, द्वितीय प्रति-प्रतिवादी, सुनील कुमार अरोड़ा, तृतीय प्रति-प्रतिवादी, अर्जुन सुरेश कंडोथ, चतुर्थ प्रति-प्रतिवादी, तथा डेविड विलियम फाउलर, पंचम प्रति-प्रतिवादी, के विरुद्ध अमेरिकी डॉलर 5,743,155.14 की राशि में पारित किया जाता है।*
>
> *175. अमेरिकी डॉलर 5,743,155.14 पर 5.33% वार्षिक दर से ब्याज 1 मई 2016 से लेकर निर्णय पारित होने की तिथि तक अदा किया जाना है।*
>
> *XXXXX*

178. निर्णय डिस्कवरी ड्रिलिंग पी.टी.ई. *लिमिटेड के पक्ष में परमोद कुमार, द्वितीय प्रति-प्रतिवादी, तथा सुनील कुमार अरोड़ा, तृतीय प्रति-प्रतिवादी, के विरुद्ध पारित किया जाता है, जिसमें उन्हें श्रीमान कन्दोथ से मिले US$500,000 के गुप्त मुनाफे के लिए दोषी ठहराया गया है।*

179. प्रति-प्रतिवादीगण को कार्यवाही की यथोचित लागत डिस्कवरी ड्रिलिंग पी.टी.ई. *लिमिटेड को अदा करनी होगी।"*

2.10 इसके अतिरिक्त, निर्णय याचिकाकर्ता के पक्ष में तथा अन्य पक्षकारों, जिनमें AKRO भी सम्मिलित है, के विरुद्ध पारित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को उनसे कुछ राशियों का हकदार ठहराया गया। तथापि, चूँकि यह वर्तमान कार्यवाही से संबंधित नहीं है, अतः उसके विवरण का यहाँ उल्लेख आवश्यक नहीं है।

2.11 तत्पश्चात याचिकाकर्ता ने एस.आई.सी.सी. के समक्ष निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने हेतु आवेदन किया और वर्तमान याचिका दायर की, जिसमें उक्त निर्णय के प्रवर्तन की प्रार्थना प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध की गई है।

<u>प्रत्यर्थीगण की आपतियाँ</u>

3. श्री राकेश टिकू, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जो प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित हुए, ने वर्तमान याचिका की ग्राह्यता को चुनौती दी है, जो सी.पी.सी.

की धारा 44क के अंतर्गत दायर की गई है। संक्षेप में उनकी आपत्तियों का सार इस प्रकार है कि उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि:

3.1 सी.पी.सी. की धारा 44क के अर्थ में एस.आई.सी.सी. सही मायने में एक "न्यायालय" नहीं है;

3.2 सी.पी.सी. की धारा 44क इस मामले में पारित निर्णय पर लागू नहीं होती क्योंकि स्पष्टीकरण 1 के अनुसार एस.आई.सी.सी. “वरिष्ठ न्यायालय” नहीं है;

3.3 वर्तमान याचिका के साथ एस.आई.सी.सी. का ऐसा प्रमाणपत्र संलग्न नहीं है जिसमें यह उल्लेख हो कि डिक्री किस सीमा तक, यदि कोई हो, संतुष्ट या समायोजित की गई है।

3.4 एस.आई.सी.सी. द्वारा प्रतिवादियों को जारी किए गए समन की तामील का कथित तरीका भारतीय कानून के विपरीत है और इसलिए, विचाराधीन निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है;

3.5 प्रत्यर्थीगण को प्रत्यावेदन में पक्षकार नहीं बनाया जा सकता था और बिना प्रत्यर्थीगण की स्पष्ट सहमति के मामला एस.आई.सी.सी. द्वारा विचारणीय नहीं था;

3.6 एस.आई.सी.सी. का विवादित निर्णय गुणागुण के आधार पर पारित नहीं किया गया, बल्कि केवल इस कारण कि प्रत्यर्थीगण ने अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं कराई और उनके विरुद्ध एक पक्षीय कार्यवाही की गई;

3.7 याचिकाकर्ता के जवाबी दावे का स्वरूप 'वाणिज्यिक विवाद' नहीं कहा जा सकता और इस कारण एस.आई.सी.सी. को उक्त जवाबी दावे पर सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं था।

<u>याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ:</u>

4. दूसरी ओर, श्री तन्मय मेहता, विद्वान अधिवक्ता, जो याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित हुए, यह प्रस्तुत करते हैं कि विवादित निर्णय को चुनौती देने अथवा सी.पी.सी. की धारा 44क के अंतर्गत निर्णय के प्रवर्तन का प्रतिरोध करने के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा उठाए गए उपर्युक्त किसी भी आधार का औचित्य सिद्ध नहीं होता। उन्होंने यह प्रस्तुत किया है कि:

4.1 एस.आई.सी.सी. में 'न्यायालय' के सभी गुण और विशेषताएँ विद्यमान हैं, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय न्यायविधि अधिनियम,, 1969 (जिसे आगे 'एस.सी. अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 18ख के अनुसार, एस.आई.सी.सी. के अध्यक्ष एक सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, वरिष्ठ न्यायाधीश अथवा सिंगापुर के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधीश होते हैं; कार्यवाहियाँ एकल

न्यायाधीश अथवा तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष सुनी और निस्तारित की जाती हैं; यह अपने अधिकारों का प्रयोग 'न्यायालय के नियमों' (जिसे आगे 'नियम' कहा जाएगा) के अनुसार करता है और सामान्यतः सिंगापुर में लागू साक्ष्य नियमों को लागू करता है, जब तक कि विवाद एक अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक विवाद न हो और पक्षकारों ने किसी अन्य साक्ष्य नियम पर सहमति न दी हो।

4.2 वे प्रस्तुत करते हैं कि दिनांक 01.09.1955 को केंद्र सरकार द्वारा जारी राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से 'सिंगापुर कॉलोनी' को 'व्यतिकारी राज्यक्षेत्र' घोषित किया गया और 'सिंगापुर कॉलोनी का सर्वोच्च न्यायालय' को उस क्षेत्र के संदर्भ में 'वरिष्ठ न्यायालय' घोषित किया गया। तत्पश्चात, दिनांक 25.06.1968 की राजपत्र अधिसूचना द्वारा 'सिंगापुर गणराज्य' को सी.पी.सी. की धारा 44क के प्रयोजनों हेतु 'व्यतिकारी राज्यक्षेत्र' के रूप में मान्यता दी गई और 'सिंगापुर गणराज्य का उच्च न्यायालय' को उस क्षेत्र के संदर्भ में 'वरिष्ठ न्यायालय' घोषित किया गया।

4.3 वे प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी., जो सिंगापुर उच्च न्यायालय का एक विभाग है, उपर्युक्त दोनों अधिसूचनाओं के अनुसार सी.पी.सी. की धारा 44क के प्रयोजनों हेतु एक 'वरिष्ठ न्यायालय' है।

4.4 वे प्रस्तुत करते हैं कि चूँकि एस.आई.सी.सी. में सी.पी.सी. की धारा 44क के अंतर्गत निर्धारित प्रमाणपत्र जारी करने की कोई प्रक्रिया उपलब्ध नहीं है, अतः याचिकाकर्ता को एस.आई.सी.सी. से एक ईमेल प्राप्त हुआ है जिसमें यह प्रमाणित किया गया है कि दिनांक 31.05.2019 के निर्णय के निष्पादन हेतु सिंगापुर सर्वोच्च न्यायालय में कोई प्रवर्तन कार्यवाही दायर नहीं की गई है और एस.आई.सी.सी. के समक्ष कोई वसूली नहीं की गई है। वे प्रस्तुत करते हैं कि यह ईमेल सी.पी.सी. की धारा 44क(2) के अंतर्गत प्रमाणपत्र की आवश्यकता को पूरा करने हेतु पर्याप्त है।

4.5 प्रत्यर्थीगण को प्रत्यावेदन पर जारी समन की तामील तथा विभिन्न ईमेलों में उन्हें प्राप्तकर्ता के रूप में अंकित किए जाने के संपूर्ण विवरण देते हुए, वे प्रस्तुत करते हैं कि प्रत्यर्थीगण, प्रत्यावेदन की लंबितता की जानकारी होने के बावजूद, जानबूझकर एस.आई.सी.सी. के समक्ष उपस्थित नहीं हुए और इसलिए अब वे एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित निर्णय को चुनौती नहीं दे सकते।

4.6 वे प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. पर लागू नियमों के आदेश 110 के अनुसार, उस पक्ष की सहमति प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है जिसे बाद में दावा या प्रत्यावेदन में पक्षकार बनाया जाता है; सहमति केवल मूल पक्षकारों से उत्पत्ति प्रक्रिया के समय

आवश्यक होती है। वे प्रस्तुत करते हैं कि सहमति को अनुमानित भी किया जा सकता है क्योंकि प्रत्यर्थीगण ने न केवल अपना साक्ष्य-शपथपत्र दाखिल किया बल्कि AKRO की ओर से सिंगापुर जाकर बयान भी दिया।

4.7 वे प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित निर्णय याचिकाकर्ता के दावे और प्रस्तुत साक्ष्यों के गुणागुण की परीक्षा पर आधारित है, न कि केवल प्रत्यर्थीगण की अनुपस्थिति के आधार पर, जैसा कि प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

4.8 वे प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता और प्रत्यावेदन में प्रतिवादीगण के बीच का मूल विवाद वाणिज्यिक प्रकार का था और इसलिए एस.आई.सी.सी. को उसका विचारण करने का अधिकार क्षेत्र प्राप्त था। वे यह भी प्रस्तुत करते हैं कि किसी भी स्थिति में एस.आई.सी.सी. के अधिकार क्षेत्र को प्रत्यर्थीगण केवल एस.आई.सी.सी. के समक्ष ही चुनौती दे सकते हैं, इस न्यायालय के समक्ष अथवा इन कार्यवाहियों में नहीं।

<u>विश्लेषण और निष्कर्ष:</u>

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के उपर्युक्त निवेदनों पर विचार करने से पूर्व, यह उपयुक्त होगा कि पहले सी.पी.सी. की धारा 44क को उद्धृत किया जाए, जो इस प्रकार है: —

> *"44क. **व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में न्यायालयों द्वारा पारित डिक्री का निष्पादन.**—(1) जहाँ किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र के किसी वरिष्ठ न्यायालय की डिक्री की प्रमाणित प्रति जिला न्यायालय में दाखिल की गई हो, वहाँ उस डिक्री का भारत में उसी प्रकार निष्पादन किया जा सकता है मानो वह जिला न्यायालय द्वारा पारित की गई हो।*
>
> *(2) प्रमाणित प्रति के साथ उस वरिष्ठ न्यायालय का एक प्रमाणपत्र दाखिल किया जाएगा जिसमें यह उल्लेख होगा कि डिक्री किस सीमा तक, यदि कोई हो, संतुष्ट या समायोजित की गई है और यह प्रमाणपत्र इस धारा के अंतर्गत कार्यवाहियों के प्रयोजनों हेतु ऐसी संतुष्टि या समायोजन की सीमा का निर्णायक प्रमाण होगा।*
>
> *(3) प्रमाणित प्रति दाखिल किए जाने के पश्चात्, सी.पी.सी. की धारा 47 के प्रावधान इस धारा के अंतर्गत डिक्री का निष्पादन करने वाले जिला न्यायालय की कार्यवाहियों पर लागू होंगे, और यदि न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार यह प्रदर्शित किया जाए कि डिक्री धारा 13 की उपधाराओं (क) से (च) में निर्दिष्ट किसी अपवाद के अंतर्गत आती है, तो जिला न्यायालय ऐसी डिक्री के निष्पादन से इंकार करेगा।*

स्पष्टीकरण 1.– "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" का अर्थ है भारत के बाहर कोई भी देश या क्षेत्र जिसे केंद्र सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस धारा के प्रयोजनों हेतु व्यतिकारी राज्यक्षेत्र घोषित करे; और 'वरिष्ठ न्यायालय', ऐसे किसी क्षेत्र के संदर्भ में, वे न्यायालय होंगे जिन्हें उक्त अधिसूचना में निर्दिष्ट किया गया हो।

स्पष्टीकरण 2.– "डिक्री" का अर्थ, किसी वरिष्ठ न्यायालय के संदर्भ में, ऐसी कोई भी डिक्री या निर्णय है जिसके अंतर्गत धनराशि देय हो, परंतु इसमें करों या इसी प्रकार के अन्य शुल्कों अथवा किसी जुर्माने या अन्य दंड के संबंध में देय राशि सम्मिलित नहीं होगी। साथ ही, किसी भी स्थिति में इसमें मध्यस्थता अधिनिर्णय सम्मिलित नहीं होगा, भले ही ऐसा अधिनिर्णय डिक्री या निर्णय के रूप में प्रवर्तनीय हो।

6. उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि सी.पी.सी. की धारा 44क का आह्वान करने हेतु आवश्यक है कि डिक्री किसी 'व्यतिकारी राज्यक्षेत्र' के किसी "वरिष्ठ न्यायालय" द्वारा पारित की गई हो। धारा 44क का स्पष्टीकरण 1 यह कहता है कि 'व्यतिकारी राज्यक्षेत्र' का अर्थ है भारत के बाहर कोई भी देश अथवा क्षेत्र जिसे केंद्र सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस धारा के प्रयोजनों हेतु व्यतिकारी राज्यक्षेत्र घोषित करे; और "वरिष्ठ न्यायालय", ऐसे किसी क्षेत्र के संदर्भ में, वे न्यायालय होंगे जिन्हें उक्त अधिसूचना में निर्दिष्ट किया गया हो।

7. इसमें कोई विवाद नहीं है कि सिंगापुर गणराज्य को सी.पी.सी. की धारा 44क के प्रयोजनों हेतु "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" घोषित किया गया है और सिंगापुर गणराज्य के उच्च न्यायालय को उस क्षेत्र के संदर्भ में "वरिष्ठ न्यायालय" घोषित किया गया है, जो दिनांक 25.06.1968 की राजपत्र अधिसूचना द्वारा किया गया। तथापि, पक्षकार इस बात पर परस्पर असहमति रखते हैं कि क्या एस.आई.सी.सी. को सी.पी.सी. की धारा 44क, के प्रयोजनों हेतु 'वरिष्ठ न्यायालय' के रूप में अधिसूचित माना जा सकता है।

क. ***<u>वरिष्ठ न्यायालय</u>***

8. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता यह प्रस्तुत करते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क की व्याख्या 1 के अनुसार, उक्त प्रावधान केवल किसी "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" के किसी "वरिष्ठ न्यायालय" द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन के लिए ही उपलब्ध है। साथ ही, "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" को अधिसूचित करने तथा ऐसे क्षेत्र के संदर्भ में "वरिष्ठ न्यायालयों" को निर्दिष्ट करने का अधिकार केंद्र सरकार के पास है। वह प्रस्तुत करते हैं कि जहाँ तक सिंगापुर गणराज्य का संबंध है, केंद्र सरकार ने दिनांक 25.06.1968 की राजपत्र अधिसूचना द्वारा उसे एक "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" के रूप में अधिसूचित किया था, और उसी अधिसूचना द्वारा "सिंगापुर गणराज्य के उच्च न्यायालय" को उस क्षेत्र के संदर्भ में "वरिष्ठ न्यायालय" घोषित किया गया था। वह प्रस्तुत करते हैं कि अतः सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के प्रयोजनों

के लिए केवल सिंगापुर के उच्च न्यायालय को ही केंद्र सरकार द्वारा "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में मान्यता दी गई है। वह प्रस्तुत करते हैं कि उक्त अधिसूचना की तिथि को, एस.सी. अधिनियम की धारा 3 के अनुसार, सिंगापुर का उच्च न्यायालय मूल तथा अपीलीय सिविल एवं आपराधिक अधिकार-क्षेत्र से संपन्न था, और केवल 01.01.2015 को ही एस.सी. अधिनियम की धारा 18क के अंतर्गत एस.आई.सी.सी. की स्थापना सिंगापुर के उच्च न्यायालय के एक विभाग के रूप में की गई। वह प्रस्तुत करते हैं कि तथापि, एस.आई.सी.सी. की स्थापना के पश्चात केंद्र सरकार ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क की व्याख्या 1 के अंतर्गत कोई भी राजपत्र अधिसूचना जारी नहीं की है, जिसके द्वारा एस.आई.सी.सी. को "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में मान्यता दी गई हो। अतः वह प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित कोई निर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अंतर्गत प्रवर्तित नहीं किया जा सकता।

9. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मेहता यह प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी., सिंगापुर के उच्च न्यायालय के एक विभाग के रूप में गठित किया गया है, जिसे केंद्र सरकार द्वारा दिनांक 25.06.1968 की राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में मान्यता दी गई है; अतः वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के प्रयोजनों के लिए भी एक "वरिष्ठ न्यायालय" है और इस हैसियत को मान्यता देने के लिए किसी अतिरिक्त अधिसूचना की आवश्यकता नहीं है। वह यह

प्रस्तुत करते हैं कि प्रत्येक बार किसी ऐसे न्यायालय के नियमों में संशोधन किए जाने पर, जिसे "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में मान्यता प्राप्त है, नई राजपत्र अधिसूचना जारी किया जाना आवश्यक नहीं है। उदाहरण देते हुए वह प्रस्तुत करते हैं कि वाणिज्यिक न्यायालय अधिनियम, 2015 के अधिनियमन के साथ, निर्दिष्ट मूल्य के वाणिज्यिक विवादों के निपटारे हेतु उच्च न्यायालय में वाणिज्यिक विभाग का गठन किया गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि ये नए न्यायालय हैं, जिनके लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क जैसे पारस्परिक विधिक प्रावधानों वाले देशों में अतिरिक्त मान्यता की आवश्यकता होगी। वह प्रस्तुत करते हैं कि स्थानीय अधिनियमों द्वारा न्यायालयों को नई अधिकार-क्षेत्र भी प्रदान किया जाता हैं, और पुनः यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी नई अधिकार-क्षेत्र प्रदान किए जाने के साथ ही ये न्यायालय "वरिष्ठ न्यायालय" नहीं रहेंगे और प्रत्येक बार नई अधिकार-क्षेत्र प्रदान किए जाने पर नई राजपत्र अधिसूचना की आवश्यकता होगी।

10. इस न्यायालय के ***ट्रांसएशिया (प्राइवेट) कैपिटल लिमिटेड बनाम गौरव धवन***, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 1957 के निर्णय पर भरोसा रखते हुए, वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. में एक "वरिष्ठ न्यायालय" की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि एस.आई.सी.सी. के अध्यक्ष की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश द्वारा की जाती है और वह या तो अपीलीय न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, सर्वोच्च

न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश अथवा सर्वोच्च न्यायालय के अंतरराष्ट्रीय न्यायाधीश हो सकते हैं; एस.आई.सी.सी. में प्रत्येक कार्यवाही की सुनवाई एवं निपटान या तो एकल न्यायाधीश द्वारा या तीन न्यायाधीशों द्वारा किया जाता है; एस.आई.सी.सी. अपने अधिकारों का प्रयोग उस न्यायालय से संबंधित नियमों अथवा उन अधिकारों से संबंधित किसी अन्य लिखित विधि के अनुसार करता है; तथा सामान्यतः वह सिंगापुर में लागू साक्ष्य के नियमों को लागू करता है, जब तक कि विवाद एक अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक विवाद न हो और पक्षकारों ने साक्ष्य के किसी अन्य नियम पर सहमति न दी हो।

11. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है।

12. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के पाठ से यह स्पष्ट है कि किसी भी "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" के किसी भी "वरिष्ठ न्यायालय" द्वारा पारित डिक्री का भारत में इस प्रकार निष्पादन किया जा सकता है, मानो वह भारत के किसी जिला न्यायालय द्वारा पारित की गई हो। यह किसी "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" के किसी "वरिष्ठ न्यायालय" द्वारा पारित डिक्री को प्रदान की गई एक विशेष स्थिति है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क की व्याख्या 1 केंद्र सरकार को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा भारत के बाहर किसी भी देश या क्षेत्र को धारा 44क के प्रयोजनों के लिए व्यतिकारी राज्यक्षेत्र घोषित कर सके, तथा ऐसे देश या क्षेत्र की किसी भी

न्यायालय को "वरिष्ठ न्यायालय" घोषित कर सके। अतः भले ही भारत के बाहर किसी देश या क्षेत्र को "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" के रूप में मान्यता दे दी जाए, तथापि उस क्षेत्र की सभी न्यायालयों को आवश्यक रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के प्रयोजनों के लिए "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं होती।

13. जहाँ तक सिंगापुर का संबंध है, केंद्र सरकार ने दिनांक 01.09.1955 की राजपत्र अधिसूचना द्वारा सिंगापुर कॉलोनी को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के प्रयोजनों के लिए एक "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" के रूप में तथा वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय को एक "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में मान्यता दी थी। दिनांक 25.06.1968 की एक अन्य राजपत्र अधिसूचना द्वारा, जो दिनांक 01.09.1955 की राजपत्र अधिसूचना के स्थान पर जारी की गई थी, केंद्र सरकार ने सिंगापुर गणराज्य को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के प्रयोजनों के लिए एक "व्यतिकारी राज्यक्षेत्र" घोषित किया तथा उस क्षेत्र के संदर्भ में "सिंगापुर गणराज्य के उच्च न्यायालय" को एक "वरिष्ठ न्यायालय" घोषित किया।

14. एस.आई.सी.सी. की स्थापना अधिनियम सं. 42/2014 द्वारा, दिनांक 01.01.2015 से प्रभावी रूप से, सिंगापुर के उच्च न्यायालय के एक विभाग के रूप में की गई। एस.सी. अधिनियम की धारा 18क निम्नानुसार प्रावधान करती है:

"18क. उच्च न्यायालय का एक विभाग होगा जिसे सिंगापुर अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक न्यायालय के नाम से जाना जाएगा।"

15. एस.सी. अधिनियम की धारा 18घ, एस.आई.सी.सी. के अधिकार-क्षेत्र के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान करती है:

"सिंगापुर अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र

18घ. (1) सिंगापुर अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक न्यायालय को किसी भी ऐसे वाद की सुनवाई और विचारण करने का अधिकार होगा, जो निम्नलिखित सभी शर्तों को पूरा करता हो:

(क) वाद अंतरराष्ट्रीय तथा वाणिज्यिक प्रकार का हो;

(ख) वाद ऐसा हो जिसकी सुनवाई और विचारण उच्च न्यायालय अपने मूल दीवानी अधिकार-क्षेत्र में कर सकता है;

(ग) वाद न्यायालय नियमावली द्वारा निर्धारित की गई अन्य ऐसी शर्तों को भी पूरा करता हो।

(2) उपधारा (1) को सीमित किए बिना, सिंगापुर अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक न्यायालय (जो उच्च न्यायालय का एक विभाग है) को अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता से संबंधित किसी भी ऐसी कार्यवाही की सुनवाई का अधिकार होगा, जिसकी सुनवाई उच्च न्यायालय कर सकता है और जो न्यायालय नियमावली द्वारा निर्धारित की गई ऐसी शर्तों को पूरा करती हो।"

16. एस.सी. अधिनियम की धारा 80 के अध्याय 322 के तहत नियमावली का आदेश 110, एस.आई.सी.सी. से संबंधित है। नियमावली के आदेश 110, नियम 1, उप-नियम 2(क) यह परिभाषित करता है कि कौन-से दावे 'अंतरराष्ट्रीय प्रकार' के माने जाएंगे, जबकि आदेश 110, नियम 1, उप-नियम 2(ख) उन विवादों की सूची देता है जो 'वाणिज्यिक प्रकार' के हैं।

17. नियमावली के आदेश 110, नियम 7, उन अन्य शर्तों का निर्धारण करता है जिन्हें एस.आई.सी.सी. में अधिकार-क्षेत्र प्रदान करने के लिए पूरा किया जाना आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं:

> ***"क्षेत्राधिकार (आदेश 110, नियम 7)***
>
> *7.-(1) अधिनियम की धारा 18घ(1)(ग) के प्रयोजनों के लिए, अन्य शर्तें जिन्हें किसी वाद (जो अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता से संबंधित कार्यवाहियों को छोड़कर है, जिनकी सुनवाई पर एस.आई.सी.सी. को धारा 18घ(2) के अंतर्गत अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है) को पूरा करना आवश्यक है, निम्नलिखित हैं:*
>
> > *(क) जब इसे पहली बार दायर किया गया था, तब उत्पत्ति प्रक्रिया में नामित वादी और प्रतिवादियों के बीच के दावे अंतरराष्ट्रीय और वाणिज्यिक प्रकृति के हैं;*

(ख) उत्पत्ति प्रक्रिया में नामित प्रत्येक वादी और प्रतिवादी ने न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को लिखित अधिकार-समझौते के अंतर्गत स्वीकार किया हो; और

(ग) पक्षकार किसी भी राहत की मांग न करें जो किसी विशेषाधिकार आदेश (प्रेरक आदेश, निषेधात्मक आदेश, रद्द करने वाला आदेश, या निरोध की समीक्षा का आदेश सहित) के रूप में, या उससे संबंधित हो।

(2) संदेह से बचने के लिए, न्यायालय को निम्नलिखित सुनवाई और निर्णय करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है -

(क) नियम 12 या 58 के अंतर्गत न्यायालय को हस्तांतरित किया गया कोई मामला; और

(ख) आदेश 52 के अंतर्गत किसी व्यक्ति को न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय या आदेश के प्रति अवमानना के लिए प्रतिबंधित करने की अनुमति हेतु उत्पत्ति सम्मन।"

18. उपरोक्त को पढ़ने से पता चलता है कि किसी भी वाद की सुनवाई का अधिकार पक्षकारों की सहमति के साथ एस.आई.सी.सी. को प्रदान किया जाना है। एस.आई.सी.सी. के समक्ष कार्यवाहियों के लिए नियमावली के आदेश 110 के तहत पूरी प्रक्रियाओं का भी निर्धारण किया गया है।

19. उपरोक्त एस.सी. अधिनियम के प्रावधानों तथा नियमावली के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि एस.आई.सी.सी. सिंगापुर के उच्च न्यायालय का एक विभाग है। एस.सी. अधिनियम की धारा 18घ के अनुसार, उसे किसी भी ऐसे वाद की सुनवाई और विचारण करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है, जो *अन्य बातों के साथ-साथ* ऐसा वाद हो जिसकी सुनवाई और विचारण उच्च न्यायालय अपने मूल दीवानी अधिकार-क्षेत्र में कर सकता है। उक्त आवश्यकता तथा एस.आई.सी.सी. के अधिकार-क्षेत्र के लिए पूर्व-योग्यता के अतिरिक्त, एस.सी. अधिनियम की धारा 18घ तथा नियमावली के आदेश 110, नियम 7 में आगे अन्य पूर्वापेक्षाएँ भी निर्धारित की गई हैं, जिन्हें एस.आई.सी.सी. द्वारा किसी वाद की सुनवाई और विचारण करने के लिए पूरा किया जाना आवश्यक है। उपरोक्त से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि एस.आई.सी.सी. केवल सिंगापुर के उच्च न्यायालय का एक विभाग है, जिसे उन विषयों की सुनवाई का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है, जिन पर सिंगापुर के उच्च न्यायालय को पहले से ही अधिकार-क्षेत्र प्राप्त था; केवल कुछ अन्य शर्तों को पूरा किया जाना आवश्यक है, यदि विवाद का निस्तारण उच्च न्यायालय के सिविल विभाग के स्थान पर एस.आई.सी.सी. द्वारा किया जाना हो। अतः एस.आई.सी.सी. का अधिकार-क्षेत्र उच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र का एक उप-समुच्चय है और ऐसा नहीं है कि कोई नया अधिकार-क्षेत्र, जो पहले उच्च न्यायालय में निहित नहीं था, उसमें निहित हो गया हो। केवल इस कारण से कि नियमावली का आदेश 110 एस.आई.सी.सी. के समक्ष कार्यवाहियों पर लागू एक विशेष प्रक्रिया भी निर्धारित

करता है, इससे इस स्थिति में कोई अंतर नहीं आता कि एस.आई.सी.सी. सिंगापुर के उच्च न्यायालय का ही एक अंग है और, अतः केंद्र सरकार द्वारा जारी दिनांक 25.06.1968 की राजपत्र अधिसूचना के संदर्भ में, एक "वरिष्ठ न्यायालय" है।

20. अतः मैं प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाई गई इस आपत्ति में कोई भी बल नहीं पाता कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क को लागू करने के प्रयोजनों के लिए एस.आई.सी.सी. को "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में नहीं माना जा सकता।

ख. <u>क्या एस. आई. सी. सी. को 'न्यायालय' कहा जा सकता है?</u>

21. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि एस.आई.सी.सी. को विधिक अर्थों में समझे जाने वाले किसी 'न्यायालय' के रूप में बिल्कुल भी नहीं माना जा सकता। वह प्रस्तुत करते हैं कि 'न्यायालय' वह संस्था होती है जिसे राज्य के अधिकार द्वारा न्यायनिर्णयन का अधिकार प्राप्त होता है, न कि केवल पक्षकारों की सहमति के आधार पर। वह यह भी प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. में अधिकार-क्षेत्र प्रदान करने के लिए वाद के किसी भी पक्षकार का सिंगापुर गणराज्य का नागरिक होना आवश्यक नहीं है और पक्षकारों की सहमति क्षेत्रीय अधिकार-क्षेत्र की अवधारणा पर आधारित नहीं है। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि सिंगापुर के साक्ष्य के नियम भी एस.आई.सी.सी. पर लागू

नहीं होते और पक्षकार विवाद पर लागू विदेशी विधियों से संबंधित प्रश्नों का निर्धारण स्वयं कर सकते हैं। वह यह भी प्रस्तुत करते हैं कि विदेशी अधिकार-क्षेत्रों के न्यायाधीशों को भी एस.आई.सी.सी. में नियुक्त किया जा सकता है। वह प्रस्तुत करते हैं कि उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि एस.आई.सी.सी. में किसी न्यायालय के लक्षण विद्यमान नहीं हैं और परिणामस्वरूप, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अंतर्गत प्रयुक्त शब्द "वरिष्ठ न्यायालय" के अर्थ में इसे नहीं माना जा सकता।

22. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता यह प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. में एक "वरिष्ठ न्यायालय" की सभी विशेषताएँ तथा 'न्यायालय' के सभी लक्षण विद्यमान हैं। एस.सी. अधिनियम की धारा 18ख के अनुसार, एस.आई.सी.सी. के अध्यक्ष सिंगापुर के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, वरिष्ठ न्यायाधीश अथवा अंतरराष्ट्रीय न्यायाधीश होते हैं। इसके समक्ष कार्यवाहियों की सुनवाई एवं निस्तारण एकल न्यायाधीश अथवा तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया जाता है। एस.आई.सी.सी. अपने अधिकारों का प्रयोग न्यायालय के नियमों के अनुसार करता है। यह सामान्यतः सिंगापुर में लागू साक्ष्य के नियमों को लागू करता है, जब तक कि विवाद एक अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक विवाद न हो और पक्षकारों ने साक्ष्य के किसी अन्य नियम पर सहमति न दी हो।

23. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है।

24. एस.आई.सी.सी. की स्थापना राज्य के प्राधिकार, अर्थात् सिंगापुर गणराज्य द्वारा, तथा एस.सी. अधिनियम की धारा 18क के अंतर्गत, सिंगापुर के उच्च न्यायालय के एक विभाग के रूप में की गई है। एस.सी. अधिनियम की धारा 18ख मुख्य न्यायाधीश को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह अपीलीय न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश अथवा सर्वोच्च न्यायालय के अंतरराष्ट्रीय न्यायाधीश को एस.आई.सी.सी. का अध्यक्ष नियुक्त करें या स्वयं एस.आई.सी.सी. के अध्यक्ष के रूप में कार्य करें। एस.सी. अधिनियम की धारा 18ग यह प्रावधान करती है कि एस.सी. अधिनियम की धाराएँ 18घ से 18ड़ तथा 80(2क), एस.आई.सी.सी. की कार्यवाहियों पर उसी प्रकार लागू होंगी, जिस प्रकार वे उच्च न्यायालय द्वारा अपने मूल सिविल अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करते हुए की जाने वाली कार्यवाहियों पर लागू होती हैं।

25. हालाँकि यह सत्य हो सकता है कि एस.सी. अधिनियम की धारा 18घ को नियमावली के आदेश 110, नियम 7 के साथ पढ़ने पर, *अन्य बातों के साथ-साथ*, एस.आई.सी.सी. में अधिकार-क्षेत्र प्रदान करने के लिए पक्षकारों के लिखित समझौते का प्रावधान किया गया है, तथापि इससे एस.आई.सी.सी. का 'न्यायालय' होने का दर्जा समाप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त, लिखित सहमति

केवल विवाद को उच्च न्यायालय के नियमित विभाग से उच्च न्यायालय के एक विशेष विभाग, अर्थात् एस.आई.सी.सी., में स्थानांतरित करने के लिए आवश्यक है, जो एक विशेष प्रक्रिया का पालन करता है।

26. इसी प्रकार, केवल इस कारण से कि विवादों के अंतरराष्ट्रीय तथा वाणिज्यिक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए उनके शीघ्र निपटान हेतु कुछ पहलुओं में एक भिन्न प्रक्रिया निर्धारित की गई है, इससे भी एस.आई.सी.सी. का 'न्यायालय' होने का दर्जा समाप्त नहीं होता।

27. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क कि एस.आई.सी.सी., सिंगापुर विधि में पाए जाने वाले साक्ष्य के नियमों से बंधा न होने के कारण 'न्यायालय' नहीं माना जा सकता, मुझे भी प्रभावित नहीं करता।

28. नियमावली के आदेश 110, नियम 23 के अनुसार, केवल पक्षकारों की सहमति से ही एस.आई.सी.सी. के समक्ष ऐसा आवेदन किया जा सकता है कि सिंगापुर विधि में निहित साक्ष्य के नियमों को लागू न किया जाए या विदेशी विधि में निहित अथवा अन्य किसी साक्ष्य के नियमों को लागू किया जाए। ऐसे आवेदन पर विचार करते समय, एस.आई.सी.सी. को कार्यवाहियों के न्यायोचित, शीघ्र एवं किफायती निस्तारण के उद्देश्य से मार्गदर्शित होना होता है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि एस.आई.सी.सी. द्वारा विवाद का निर्णय बिना किसी साक्ष्य के नियमों से बंधे हुए तथा अपनी मनमर्जी से किया जाएगा। केवल

कार्यवाहियों के न्यायोचित, शीघ्र एवं किफायती निस्तारण के उद्देश्य से, तथा पक्षकारों की सहमति से ही, एस.आई.सी.सी. सिंगापुर विधि में निहित साक्ष्य के नियमों को लागू न करने या अन्य साक्ष्य के नियमों को लागू करने का निर्णय ले सकता है। नियमावली के आदेश 110 का नियम 23 नीचे उद्धृत किया गया है:

> ***"न्यायालय लागू किए जाने वाले साक्ष्य के नियम निर्दिष्ट कर सकता है (आदेश 110, नियम 23)"***
> *23.-(1) न्यायालय किसी पक्षकार के आवेदन पर यह आदेश दे सकता है कि–*
>
> *(क) सिंगापुर विधि में निहित कोई भी साक्ष्य का नियम, चाहे वह साक्ष्य अधिनियम (कैप. 97) के अंतर्गत हो, इन नियमों में (परंतु इस नियम में नहीं) हो अथवा अन्यत्र हो, लागू नहीं होगा; और*
>
> *(ख) इसके स्थान पर ऐसे अन्य साक्ष्य के नियम (यदि कोई हों), चाहे वे विदेशी विधि में निहित हों अथवा अन्यथा, लागू होंगे।*
>
> *(2) पैराग्राफ (1) के अंतर्गत कोई आवेदन केवल तभी किया जा सकता है, जब सभी पक्षकार निम्नलिखित पर सहमत हों–*
>
> *(क) वे साक्ष्य के नियम जो पैराग्राफ (1)(क) के प्रयोजनों के लिए लागू नहीं होंगे; और*
>
> *(ख) वे साक्ष्य के नियम, यदि कोई हों, जो अनुच्छेद (1)(ख) के प्रयोजनों के लिए उसके स्थान पर लागू होंगे।*

(3) पैराग्राफ(1) के अंतर्गत कोई आदेश पारित करते समय, न्यायालय कार्यवाहियों के न्यायोचित, शीघ्र एवं किफायती निस्तारण हेतु–

(क) पैराग्राफ (2) के अंतर्गत पक्षकारों के समझौते में संशोधन कर सकता है, परंतु केवल पक्षकारों की सहमति से; और

(ख) ऐसे अतिरिक्त शर्तें निर्धारित कर सकता है जो पक्षकारों के समझौते (या संशोधित समझौते) की पूरक हों तथा उसके अनुरूप हों, जैसा कि न्यायालय उपयुक्त समझे।

(4) न्यायालय, समय-समय पर, पैराग्राफ (1) के अंतर्गत पारित किसी भी आदेश में संशोधन या पूरक कर सकता है, किंतु केवल पैराग्राफ (3) के अनुसार तथा पक्षकारों को सुनने के पश्चात्।

(5) पैराग्राफ (1) के अंतर्गत किसी भी आदेश के बावजूद, न्यायालय किसी भी दस्तावेज़ या कथन (चाहे मौखिक हो या लिखित) को साक्ष्य से अपवर्जित करेगा, जहाँ विशेष राजनीतिक या संस्थागत संवेदनशीलता के आधार मौजूद हों (जिसमें वह कोई भी विषय शामिल है जिसे सरकार, किसी विदेशी सरकार या किसी सार्वजनिक अंतरराष्ट्रीय संस्था द्वारा गोपनीय के रूप में वर्गीकृत किया गया हो), जिन्हें न्यायालय अनिवार्य रूप से आवश्यक माने या जिन्हें महान्यायवादी द्वारा प्रमाणित किया गया हो।

(6) इस नियम तथा नियम 24 में, "साक्ष्य का नियम" में विशेषाधिकार अथवा साक्ष्य ग्रहण करने से संबंधित विधि का कोई भी नियम शामिल है।"

29. इसी प्रकार, केवल इस कारण से कि नियमावली के आदेश 110, नियम 25 के अनुसार, एस.आई.सी.सी. विदेशी विधि से संबंधित किसी प्रश्न के औपचारिक प्रमाण से छूट दे सकता है, इससे भी एस.आई.सी.सी. का 'न्यायालय' होने का दर्जा समाप्त नहीं होता। नियमावली के आदेश 110, नियम 25 के अनुसार, ऐसी शर्तों का निर्धारण किया गया है जिन्हें पूरा किया जाना आवश्यक है, तभी एस.आई.सी.सी. द्वारा विदेशी विधि के औपचारिक प्रमाण से छूट दी जा सकती है। किसी भी स्थिति में, मात्र यही आधार यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता कि एस.आई.सी.सी. सामान्य विधिक अर्थों में समझे जाने वाले 'न्यायालय' के रूप में नहीं है।

30. अतः मैं एस.आई.सी.सी. की 'न्यायालय' के रूप में स्थिति को चुनौती देने संबंधी, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा की गई दलील में कोई भी गुणागुण नहीं पाता।

ग. <u>वरिष्ठ न्यायालय से डिक्री की संतुष्टि या समायोजन का प्रमाण पत्र।</u>

31. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अंतर्गत निष्पादन आवेदन सक्षम होने के लिए, उसके साथ उस डिक्री की प्रमाणित प्रति और उस वरिष्ठ न्यायालय से एक प्रमाणपत्र संलग्न होना आवश्यक है जिसने डिक्री पारित की हो, जिसमें यह स्पष्ट किया गया हो कि डिक्री को किस हद तक, यदि कोई हो, संतोषजनक रूप से पूरा किया गया या समायोजित किया गया है।

वह प्रस्तुत करते हैं कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता ने ऐसा प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया है और इसके स्थान पर केवल 19.11.2019 की एक पत्र एस.आई.सी.सी. से प्रस्तुत की है, जिसमें प्रमाणित किया गया है कि उसके निर्णय के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई है, और न ही सिंगापुर के सर्वोच्च न्यायालय में उस निर्णय में प्रदत्त राशियों के संबंध में कोई प्रवर्तन कार्यवाही शुरू की गई है। वह प्रस्तुत करते हैं कि यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अनुसार प्रमाणपत्र नहीं है।

32. अपने तर्क के समर्थन में कि ऐसे प्रमाणपत्र का दायर करना अनिवार्य है, उसके विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ***बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड***, (2020) 17 एससीसी 798 पर भरोसा किया। उन्होंने मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय ***उथमराम बनाम के. एम. अब्दुल कासिम कंपनी***, 1962 एससीसी ऑनलाइन मैड 239 पर भी भरोसा व्यक्त किया।

33. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता यह प्रस्तुत करते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क(2) के अंतर्गत प्रमाणपत्र का दायर करना केवल एक प्रक्रियात्मक आवश्यकता है। वह प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. द्वारा जारी 19.11.2019 की ईमेल सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क(2) के अंतर्गत प्रमाणपत्र की आवश्यकता को पूरा करती है।

34. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है।

35. इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी भी पारस्परिक क्षेत्र के उच्च न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की प्रमाणित प्रति के साथ, उस उच्च न्यायालय से एक प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत किया जाए जिसमें यह बताया गया हो कि डिक्री किस हद तक (यदि कोई हो) पूरी हुई है या उसमें समायोजन किया गया है। यह प्रमाण पत्र निष्पादन न्यायालय के लिए यह समझने हेतु आवश्यक होगा कि जिस डिक्री के प्रवर्तन की प्रार्थना की गई है, वह पूरी हुई है या नहीं, और यदि हां, तो किस हद तक।

36. ***बैंक ऑफ बड़ौदा*** (पूर्वोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह रेखांकित किया कि डिक्री की प्रति के साथ प्रमाणपत्र का दायर करना कितना महत्वपूर्ण है, और इसे निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया:

> *12. ऊपर उद्धृत सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क का सावधानीपूर्वक विश्लेषण यह दर्शाता है कि किसी भी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र के वरिष्ठ न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को भारत में इस प्रकार निष्पादित किया जा सकता है, मानो वह उस जिला न्यायालय द्वारा पारित की गई हो जिसके समक्ष यह प्रस्तुत की गई है। धारा 44क की उपधारा (2) उस व्यक्ति पर यह दायित्व डालती है कि वह ऐसे आवेदन के साथ डिक्री की प्रमाणित प्रति दायर करे। इसके अलावा, ऐसे व्यक्ति को उस वरिष्ठ न्यायालय*

से एक प्रमाणपत्र भी दायर करना आवश्यक है जिसने डिक्री पारित की हो, जिसमें यह स्पष्ट किया गया हो कि डिक्री को किस हद तक, यदि कोई हो, पूरा किया गया या समायोजित किया गया है। यह प्रमाणपत्र उक्त संतोषजनक/समायोजित होने की सीमा का निर्णायक प्रमाण होगा।...

XXXXX

38. ऐसा कहने के बाद, हमारा स्पष्ट दृष्टिकोण है कि धारा 44क के अंतर्गत आवेदन दायर करने की अवधि के संबंध में कुछ स्पष्टता प्रदान करना आवश्यक है। इस संदर्भ में, जब हम धारा 44क की उपधारा (1) और उपधारा (2) को एक साथ पढ़ते हैं, तो स्पष्ट है कि जो दायर करना आवश्यक है वह उपधारा (1) के अनुसार डिक्री की प्रमाणित प्रति और साथ ही उस देश के न्यायालय से एक प्रमाणपत्र है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया हो कि डिक्री को किस हद तक, यदि कोई हो, पूरा किया गया या समायोजित किया गया है। ये दोनों आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं और कोई भी विदेशी डिक्री तभी निष्पादित की जा सकती है जब दोनों आवश्यकताएँ पूरी हों। केवल डिक्री की प्रमाणित प्रति ही नहीं, बल्कि उपधारा (2) के अनुसार प्रमाणपत्र दायर करना भी अनिवार्य है। हालांकि, इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य कुछ दायर नहीं करना होगा। केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि डिक्री का निष्पादन केवल तब ही किया जा सकता है जब ये दस्तावेज दायर किए गए हों। ..."

37. मद्रास उच्च न्यायालय ने ***उथमराम*** (पूर्वोक्त) में विशेष रूप से यह तर्क विचार किया कि सिंगापुर के उच्च न्यायालय के पास सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क(2) के तहत अनिवार्य प्रमाणपत्र जारी करने का कोई प्रावधान नहीं है, और यह निष्कर्ष निकाला कि केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय के नियमों में ऐसा प्रावधान नहीं है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के तहत अनिवार्य आवश्यकता को त्यागा नहीं जा सकता, और ऐसे प्रमाणपत्र के अभाव में धारा 44क के तहत निष्पादन के लिए आवेदन स्वीकार्य नहीं होगा। मैं निर्णय से उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ:

> *"धारा की उप-धारा (2) से यह स्पष्ट होता है कि वरिष्ठ न्यायालय से प्रमाणपत्र का दायर करना डिक्रीधारी पर अनिवार्य होगा। यदि ऐसा प्रमाणपत्र दायर नहीं किया जाता है, तो डिक्रीधारी को विदेशी निर्णय के सीधे निष्पादन की प्रक्रिया उपलब्ध नहीं होगी, और तब उसके पास सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के तहत अन्य उपाय शेष रहेंगे, अर्थात् विदेशी निर्णय पर मुकदमा दायर करना। धारा 44क(2) के तहत आवश्यक प्रमाणपत्र, अधिकार-क्षेत्र के प्रयोग की एक शर्त होने के नाते, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 6 के तहत* ***ज्ञापन पत्र*** *से तुलनीय नहीं है। भारत में न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र केवल तब उत्पन्न हो सकता है जब देय राशि का वैधानिक प्रमाण उपलब्ध हो। अतः प्रमाणपत्र दायर न करने पर निष्पादन के लिए आवेदन अस्वीकार कर दिया जाएगा। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि चूंकि सिंगापुर उच्च*

न्यायालय के नियमों के तहत धन संबंधी डिक्री की आंशिक संतोषजनकता प्रमाणित करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए न्यायालय असंतोष प्रमाणपत्र जारी करने के लिए तैयार नहीं होंगे। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 6 का प्रयोग उस मामले में होता है जब डिक्री को निष्पादन हेतु उस न्यायालय को स्थानांतरित किया जाता है जिसने डिक्री पारित की हो। विदेशी न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को निष्पादन के प्रयोजन के लिए भारतीय न्यायालय में स्थानांतरित करने की कोई प्रक्रिया नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अंतर्गत याचिका भारतीय न्यायालय में एक मूल याचिका है और जब तक उस धारा की शर्तें पूरी नहीं होतीं, याचिका स्वाभाविक रूप से स्वीकार्य नहीं हो सकती। यह तथ्य कि सिंगापुर उच्च न्यायालय में आंशिक संतोष दर्ज करने की कोई प्रथा नहीं है, धारा के अनिवार्य प्रावधानों का पालन न करने का औचित्य प्रदान नहीं कर सकता। हम यह अवलोकन कर सकते हैं कि भले ही उस देश में आंशिक संतोष दर्ज करने की कोई प्रथा न हो, फिर भी डिक्रीधारी के लिए यह निषिद्ध नहीं है कि वह उस न्यायालय से प्रमाणपत्र या आदेश के लिए आवेदन करे कि निर्णय पूरी तरह से या किसी निर्दिष्ट राशि के संबंध में असंतोषजनक है। अतः हमारा मत है कि प्रमाणपत्र के अभाव में निष्पादन के लिए आवेदन स्वीकार्य नहीं हो सकता।

38. अब यह विचार किया जाना है कि एस.आई.सी.सी. द्वारा 19.11.2019 को जारी की गई पत्राचार को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क(2) के अंतर्गत प्रमाणपत्र के रूप में माना जा सकता है या नहीं। उक्त पत्राचार नीचे उद्धृत किया गया है:

> *"हम 6 नवंबर 2019 को डिस्कवरी ड्रिलिंग पी.टी.ई. लिमिटेड के अधिवक्ता, श्री विशालश्वर श्रीवास्तव द्वारा भेजे गए ईमेल अनुरोध का संदर्भ लेते हैं। उस ईमेल में, अधिवक्ता अनुरोध करते हैं कि सिंगापुर अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक न्यायालय ("एस.आई.सी.सी.") 'डिक्री के असंतोष का प्रमाणपत्र' जारी करे।"*
>
> *2 एस.आई.सी.सी. किसी निर्णय की प्रमाणित प्रति जारी कर सकता है, यदि ऐसा आवेदन राष्ट्रमंडल निर्णय के पारस्परिक प्रवर्तन अधिनियम (कैप. 264) की धारा 4 के अंतर्गत, न्यायालय के नियमावली के आदेश 67, नियम 13 के साथ पढ़कर किया जाए। हालांकि, न्यायालय की नियमावली एस.आई.सी.सी. को 'डिक्री के असंतोष का प्रमाणपत्र' जारी करने का प्रावधान नहीं देती (जिसे हम समझते हैं कि यह प्रमाणपत्र यह दर्शाता है कि किसी निर्णय को किस हद तक, यदि कोई हो, पूरा किया गया या समायोजित किया गया है)।*
>
> *3 फिर भी, पूर्णता के लिए, एस.आई.सी.सी. ने निम्नलिखित जानकारी दी है:*
>
> *(i) डिस्कवरी ड्रिलिंग पी.टी.ई. लिमिटेड ने AKRO ग्रुप डीएमसीसी, प्रमोद कुमार, सुनील*

कुमार अरोड़ा, अर्जुन सुरेश कंडोथ, डेविड विलियम फाउलर और एवाईबीआई एनर्जी फिज़ के विरुद्ध एस.आई.सी.सी. द्वारा 31 मई 2019 को AKRO ग्रुप डीएमसीसी बनाम डिस्कवरी ड्रिलिंग पी.टी.ई. लिमिटेड [2019] एसजीएचसी(आई) 08 ("निर्णय") में प्रदान की गई राशि के लिए निर्णय प्राप्त किया, जिसकी प्रति http://www.sicc.gov.sg/hearings-judgments/judgrnents पर उपलब्ध है।

(ii) इस पत्र की दिनांक तक:

(क) निर्णय के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई है; और

(ख) निर्णय में प्रदत्त राशि के संबंध में सिंगापुर सर्वोच्च न्यायालय में कोई प्रवर्तन कार्यवाही नहीं की गई है।"

39. ***उथमराम*** (पूर्वोक्त) में, मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि यदि उस देश में जिसने विदेशी निर्णय पारित किया है, आंशिक संतोष दर्ज करने की कोई प्रथा नहीं है, तो डिक्रीधारी को उस विदेशी न्यायालय से प्रमाणपत्र या आदेश के लिए आवेदन करने से रोका नहीं जा सकता कि निर्णय पूरी तरह से या किसी निर्दिष्ट राशि के संबंध में असंतोषजनक है।

40. धारा 44क(2) के तहत प्रमाणपत्र, निर्णय ऋणी से दोहरी वसूली से सुरक्षा के रूप में कार्य करता है। यह देय राशि का वैधानिक प्रमाण प्रदान करता है क्योंकि इसमें यह स्पष्ट किया गया होता है कि डिक्री को किस हद तक,

यदि कोई हो, पूरा किया गया या समायोजित किया गया है, और यह उक्त संतोष/समायोजन की सीमा का निर्णायक प्रमाण होता है।

41. वर्तमान मामले में, एस.आई.सी.सी. द्वारा 19.11.2019 को जारी की गई पत्राचार में यह दर्ज है कि 06.11.2019 को याचिकाकर्ता ने एस.आई.सी.सी. से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क(2) के अंतर्गत अपेक्षित प्रमाणपत्र जारी करने का अनुरोध किया था, और यद्यपि न्यायालय की नियमावली में एस.आई.सी.सी. को ऐसा प्रमाणपत्र जारी करने का प्रावधान नहीं है, फिर भी पूर्णता के लिए एस.आई.सी.सी. ने इस संदर्भ में स्पष्ट किया कि उक्त पत्राचार की दिनांक तक, विवादित निर्णय में प्रदत्त राशि के संबंध में सिंगापुर सर्वोच्च न्यायालय में कोई प्रवर्तन कार्यवाही नहीं की गई थी।

42. यह कथन कि कोई प्रवर्तन कार्यवाही नहीं की गई है, प्रभावशाली रूप से यह सूचित करता है कि डिक्री का कोई संतोष या समायोजन एस.आई.सी.सी. में दर्ज नहीं किया गया है, जो प्रमाणपत्र की आवश्यकता के मूल उद्देश्य की पूर्ति करता है।

43. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क यह अनिवार्य नहीं करती कि डिक्रीधारी को सबसे पहले उस न्यायालय के समक्ष जाना आवश्यक है जिसने डिक्री पारित की है, ताकि उसका निष्पादन मांग सके। यह यह भी निर्धारित नहीं करती कि प्रमाणपत्र किस रूप में तैयार किया जाना चाहिए। एकमात्र आवश्यक शर्त यह है कि प्रमाणपत्र में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख होना चाहिए

कि डिक्री को किस हद तक, यदि कोई हो, पूरा किया गया या समायोजित किया गया है। वर्तमान मामले में, एस.आई.सी.सी. द्वारा 19.11.2019 की पत्राचार उक्त आवश्यकताओं को पूरा करती है और अतः इसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क(2) के संदर्भ में एक 'प्रमाणपत्र' माना जा सकता है।

44. उपर्युक्त कारणों से, मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की चुनौती में कोई गुणागुण नहीं पाता।

<u>सी.पी.सी. की धारा 13 के तहत चुनौतियाँ</u>

45. उपर्युक्त निर्णय के बाद, अब मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के अंतर्गत लगाई गई चुनौती पर विचार करूंगा।

46. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क की उपधारा 3 यह प्रावधान करती है कि यदि यह सिद्ध हो कि डिक्री सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के उपधारा (क) से (च) में निर्दिष्ट किसी भी अपवाद के अंतर्गत आती है, तो जिला न्यायालय विदेशी डिक्री के निष्पादन से इंकार करेगा।

47. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 इस प्रकार है:

> ***"13. जब विदेशी निर्णय निर्णायक न हो***–*एक विदेशी निर्णय उसी मामले के संबंध में, जो सीधे तौर पर समान पक्षकारों के बीच या उन पक्षकारों के बीच हुआ हो जिनके तहत वे या उनमें से कोई भी समान*

हक के अंतर्गत विवाद में हैं, निर्णायक होगा, सिवाय इसके–

(क) जहाँ इसे सक्षम अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा पारित नहीं किया गया हो;

(ख) जहाँ इसे मामले के गुणागुण पर नहीं दिया गया हो;

(ग) जहाँ यह कार्यवाहियों के स्पष्ट स्वरूप पर किसी गलत अंतरराष्ट्रीय कानून की दृष्टि या उन मामलों में भारत के कानून को मान्यता देने से इनकार पर आधारित प्रतीत होता हो, जहाँ ऐसा कानून लागू होता हो;

(घ) जहाँ उस कार्यवाही में जिसमें निर्णय प्राप्त किया गया, नैसर्गिक न्याय के खिलाफ कोई प्रावधान हो।

(ड.) जहाँ इसे धोखाधड़ी द्वारा प्राप्त किया गया हो;

(च) जहाँ यह किसी ऐसे दावे को समर्थन देता हो जो भारत में लागू किसी कानून के उल्लंघन पर आधारित हो।"

48. प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 की उप-धारा (क), (ख) और (घ) का हवाला देते हुए एस.आई.सी.सी. के निर्णय को चुनौती दी है।

49. वह प्रस्तुत करते हैं कि प्रत्यर्थीगण की सहमति के बिना उन्हें प्रतिवाद में शामिल नहीं किया जा सकता था; चूँकि प्रत्यर्थीगण ने एस.आई.सी.सी. के

अधिकार क्षेत्र को स्वीकार नहीं किया था, इसलिए एस.आई.सी.सी. का प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध निर्णय पारित करने का कोई अधिकार नहीं था।

50. वह प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा एस.आई.सी.सी. में किया गया दावा *'वाणिज्यिक'* प्रकार का नहीं था और इसलिए, एस.आई.सी.सी. के पास इसे निपटाने का अधिकार क्षेत्र नहीं था।

51. वह आगे तर्क करते हैं कि प्रश्न में निर्णय गुणागुण पर पारित नहीं किया गया है, और याचिकाकर्ता केवल इसलिए सफल हुआ क्योंकि प्रत्यर्थीगण एस.आई.सी.सी. के समक्ष उपस्थित नहीं हुए, और कार्यवाही एकपक्षीय रूप में की गई।

52. वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि वर्तमान मामले में, एस.आई.सी.सी. द्वारा जारी नोटिस प्रत्यर्थीगण को भारत में प्रचलित कानून के अनुसार तामील नहीं किए गए, और इसलिए, एस.आई.सी.सी. ने प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध एक पक्षीय कार्यवाही करते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया।

53. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रत्यर्थीगण को AKRO द्वारा दायर मूल दावे में मूल पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया था, बल्कि उन्हें केवल याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रतिवाद में शामिल किया गया था। वह प्रस्तुत करते हैं कि एस.आई.सी.सी. के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए केवल विवाद के आरंभिक पक्षकारों की

सहमति अनिवार्य है। एस.आई.सी.सी. के पास किसी भी पक्ष को बाद में विवाद में शामिल करने का अधिकार है, और ऐसे पक्ष की सहमति अधिकार क्षेत्र के हस्तांतरण के लिए आवश्यक नहीं है।

54. वह प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता और प्रतिवाद में प्रतिवादीगण के बीच मौलिक विवाद वाणिज्यिक प्रकार का था और इसलिए, एस.आई.सी.सी. के पास इसे निपटाने का अधिकार क्षेत्र था। वह आगे तर्क करते हैं कि अन्यथा भी, एस.आई.सी.सी. के अधिकार क्षेत्र को केवल प्रत्यर्थीगण ही एस.आई.सी.सी. के समक्ष चुनौती दे सकते हैं, न कि इस न्यायालय में और निश्चित रूप से इन कार्यवाहियों में नहीं।

55. वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि निर्णय इस लिए पारित नहीं किया गया क्योंकि प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध एक पक्षीय कार्यवाही की गई, बल्कि यह याचिकाकर्ता के दावे के गुणागुण पर विचार करने के पश्चात पारित किया गया। अतः यह निर्णय एस.आई.सी.सी. द्वारा विवाद के गुणागुण पर पारित किया गया है, और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(ख) लागू नहीं होती।

56. नोटिस के तामील के संबंध में, वह दोहराते हैं कि प्रत्यर्थीगण एस.आई.सी.सी. में कार्यवाहियों की लंबित स्थिति से पूर्ण रूप से अवगत थे और उन्होंने इसमें उपस्थित होने का विकल्प नहीं चुना। अतः अब वे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का दावा नहीं कर सकते।

57. मैं अब उपरोक्त तर्कों पर अधिक विस्तार से विचार करूंगा।

घ. <u>एस.आई.सी.सी. के अधिकार क्षेत्र को स्वीकार करने में प्रत्यर्थीगण की सहमति का अभाव</u>

58. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क है कि प्रत्यर्थीगण को आरंभ में AKRO द्वारा दायर दावे या याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रतिवाद में पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया था। बाद में, उन्हें याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रतिवाद में दूसरी संशोधन के माध्यम से प्रतिवादीगण पक्ष के रूप में शामिल किया गया। हालांकि, प्रत्यर्थीगण ने न तो इस विवाद को एस.आई.सी.सी. द्वारा निपटाए जाने के लिए सहमति दी और न ही इसके अधिकार क्षेत्र को स्वीकार किया, जो कि एस.सी. अधिनियम और नियमावली के अनुसार एस.आई.सी.सी. में अधिकार क्षेत्र के हस्तांतरण के लिए पूर्व-आवश्यक शर्त है।

59. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि केवल तभी जब दावा आरंभ में एस.आई.सी.सी. के समक्ष दायर किया जाता है या एस.आई.सी.सी. में स्थानांतरित किया जाता है, तब ही पक्षकारों की सहमति पूर्व-आवश्यक शर्त होती है। हालांकि, यदि एस.आई.सी.सी. यह पाता है कि पक्षकारों को वादी या प्रतिवादीगण के रूप में शामिल किया जाना है, तो आदेश 110, नियम 9 के अनुसार, एस.आई.सी.सी. के अधिकार क्षेत्र में यह आदेश

जारी करना शामिल है कि ऐसे पक्ष को शामिल किया जाए, भले ही उक्त पक्ष की सहमति न हो।

60. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है।

61. एस.सी अधिनियम की धारा 18घ के अनुसार, एस.आई.सी.सी. के पास किसी भी कार्रवाई को सुनने और निपटाने का अधिकार क्षेत्र होगा, बशर्ते अन्य शर्तों के अलावा, वे शर्तें भी पूरी हों जो नियमावली द्वारा निर्धारित की गई हैं। आदेश 110, नियम 7 में वे अन्य शर्तें निर्धारित की गई हैं जिन्हें किसी भी कार्रवाई को सुनने और निपटाने के लिए एस.आई.सी.सी. के अधिकार क्षेत्र में हस्तांतरण के लिए पूरा करना आवश्यक है। जैसा कि उक्त नियम से स्पष्ट है, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, अधिकार क्षेत्र हस्तांतरण के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त यह है कि *'प्रत्येक वादी और प्रतिवादी, जिनका नाम आरंभिक कार्यवाही में शामिल किया गया था, ने न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लिखित अधिकार क्षेत्र समझौते के माध्यम से स्वीकार किया हो'*। अतः किसी भी कार्रवाई को सुनने और निपटाने के लिए एस.आई.सी.सी. में अधिकार क्षेत्र हस्तांतरित करने के लिए पक्षकारों की स्पष्ट सहमति लिखित अधिकार क्षेत्र समझौते के माध्यम से आवश्यक है।

62. इसी समय, नियमों के आदेश 110 का नियम 9, 'अन्य व्यक्तियों को पक्षकार के रूप में जोड़े जाने' से संबंधित है, और यह प्रावधान करता है कि

जिस वाद में एस.आई.सी.सी. के पास अधिकार क्षेत्र है और वह उसे ग्रहण करता है, या जिस मामले को नियमों के नियम 12 या 58 के अंतर्गत एस.आई.सी.सी. में स्थानांतरित किया गया है, उसमें किसी व्यक्ति को पक्षकार के रूप में, अतिरिक्त वादी या प्रतिवादी के रूप में, अथवा वाद के तृतीय या पश्चातवर्ती पक्षकार के रूप में जोड़ा जा सकता है। नियमों के आदेश 110 का नियम 9 नीचे उद्धृत किया गया है:

> ***"अन्य व्यक्तियों को पक्षकार के रूप में जोड़ा जाना (आदेश 110, नियम 9)***
> *9- (1) ऐसे किसी वाद में, जिसमें न्यायालय के पास अधिकार-क्षेत्र हो और वह अधिकार-क्षेत्र ग्रहण करता हो, अथवा ऐसे किसी मामले में जिसे नियम 12 या 58 के अंतर्गत न्यायालय में स्थानांतरित किया गया हो, किसी व्यक्ति को वाद में पक्षकार के रूप में (जिसमें अतिरिक्त वादी या प्रतिवादी, या तृतीय अथवा बाद के पक्षकार के रूप में जोड़ा जाना भी शामिल है) जोड़ा जा सकता है, यदि–*
>
> *(क) इन नियमों के अंतर्गत उस व्यक्ति को पक्षकार के रूप में जोड़ने की आवश्यकताएँ पूरी होती हों; और*
>
> *(ख) उस व्यक्ति द्वारा या उसके विरुद्ध किए गए दावे–*
>
> *(i) किसी **विशेषाधिकार** आदेश के रूप में, या उससे संबद्ध किसी राहत का दावा सम्मिलित न करते हों (जिसमें अनिवार्य आदेश, निषेधात्मक आदेश, **खारिज करने***

का आदेश अथवा निरोध की समीक्षा हेतु आदेश शामिल हैं); और

(ii) न्यायालय में सुनवाई के लिए उपयुक्त हैं।

(2) किसी राज्य या किसी राज्य के संप्रभु को न्यायालय में किसी वाद का पक्षकार नहीं बनाया जा सकता, जब तक कि उस राज्य या संप्रभु ने लिखित अधिकार-क्षेत्र समझौते के माध्यम से न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार न किया हो।

(3) पैराग्राफ (1) के अंतर्गत अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय, न्यायालय को अपने अंतरराष्ट्रीय एवं वाणिज्यिक स्वरूप को ध्यान में रखना होगा।

63. आदेश 110 नियम 7 तथा आदेश 110 नियम 9, इन दोनों प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने पर, प्रथम दृष्टया यह प्रतीत हो सकता है कि लिखित अधिकार-क्षेत्र समझौता केवल उस वादी और प्रतिवादी से अपेक्षित है, जिनका नाम मूल प्रक्रिया में उल्लिखित है, न कि उस पक्षकार से जिसे बाद में आदेश 110 नियम 9 के अंतर्गत अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए एस.आई.सी.सी. द्वारा जोड़ा गया हो; तथापि, यह धारणा सही नहीं हो सकती।

64. आदेश 110 नियम 9(1) यह निर्धारित करता है कि किसी पक्षकार को जोड़ने के लिए नियमों में निर्धारित आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी चाहिए, तथा यह कि उस व्यक्ति द्वारा या उसके विरुद्ध किया गया दावा एस.आई.सी.सी. द्वारा सुनवाई के लिए उपयुक्त हो।

65. जहाँ तक प्रत्युत्तर-दावे में किसी पक्षकार को जोड़े जाने का प्रश्न है, उसका प्रावधान आदेश 15 नियम 3 में किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

> ***"अतिरिक्त पक्षकारों के विरुद्ध प्रत्युत्तर-दावा (आदेश 15, नियम 3)***
>
> *3.-(1) जब किसी वाद में प्रतिवादी, जो वादी के विरुद्ध प्रत्युत्तर-दावा करता है, यह आरोप लगाता है कि कोई अन्य व्यक्ति (चाहे वह वाद का पक्षकार हो या न हो) प्रत्युत्तर-दावे के विषय-वस्तु के संबंध में वादी के साथ-साथ उसके प्रति उत्तरदायी है, या ऐसे अन्य व्यक्ति के विरुद्ध मूल वाद की विषय-वस्तु से संबंधित या उससे संबद्ध किसी राहत का दावा करता है, तब नियम 5(2) के अधीन, वह ऐसे अन्य व्यक्ति को उस पक्षकार के रूप में जोड़ सकता है जिसके विरुद्ध प्रत्युत्तर-दावा किया गया है।*
>
> *(2) जहाँ कोई प्रतिवादी किसी व्यक्ति को उस पक्षकार के रूप में जोड़ता है जिसके विरुद्ध वह प्रत्युत्तर-दावा करता है, वहाँ उसे उस व्यक्ति का नाम वाद के हक में जोड़ना होगा और उसे प्रत्युत्तर-दावे की एक प्रति तामील करानी होगी; <u>और जिस व्यक्ति पर इस अनुच्छेद के अंतर्गत प्रत्युत्तर-दावे की प्रति तामील की जाती है, यदि वह पहले से वाद का पक्षकार नहीं है, तो वह तामील की तिथि से वाद का पक्षकार बन जाएगा, तथा उसे प्रत्युत्तर-दावे के विरुद्ध अपने प्रतिरक्षण के संबंध में तथा अन्य सभी मामलों में वही अधिकार प्राप्त होंगे, मानो उसे</u>*

<u>प्रत्युत्तर-दावा करने वाले पक्षकार द्वारा सामान्य विधि के अनुसार विधिवत मुकदमा चलाया गया था।</u>

(3) जिस प्रतिवादी को अनुच्छेद (2) के अंतर्गत अपने द्वारा किए गए प्रत्युत्तर-दावे की एक प्रति किसी ऐसे व्यक्ति को तामील करनी आवश्यक है जो तामील से पूर्व ही वाद का पक्षकार है, उसे ऐसा उसी अवधि के भीतर करना होगा, जिस अवधि के भीतर आदेश 18 नियम 2 के अनुसार उसे उस प्रतिरक्षा को, जिसमें प्रत्युत्तर-दावा जोड़ा गया है, वादी को तामील करना होता है।

(4) जहाँ अनुच्छेद (2) के कारण किसी ऐसे व्यक्ति को, जो पहले से वाद का पक्षकार नहीं है, प्रत्युत्तर-दावे की एक प्रति तामील करना आवश्यक हो, वहाँ इन नियमों के निम्नलिखित उपबंध, अर्थात् आदेश 10 (नियम 1(4) को छोड़कर), आदेश 11 से 13 तथा आदेश 70 नियम 3, अनुच्छेद (3) के अधीन, प्रत्युत्तर-दावे तथा उससे उत्पन्न कार्यवाहियों पर ऐसे लागू होंगे मानो –

क. प्रत्युत्तर-दावा एक वाद-पत्र (रिट) हो और उससे उत्पन्न कार्यवाहियाँ एक वाद हों; तथा

ख. <u>प्रत्युत्तर-दावा करने वाला पक्षकार उस वाद में वादी हो और जिसके विरुद्ध प्रत्युत्तर-दावा किया गया है वह उस वाद में प्रतिवादी हो।</u>

(5) जिस व्यक्ति पर प्रत्युत्तर-दावे की एक प्रति तामील की जानी आवश्यक है और जो पहले से वाद का पक्षकार नहीं है, उस व्यक्ति को दी जाने वाली प्रत्युत्तर-दावे की प्रति पर प्रपत्र 12 में एक सूचना अंकित की जानी होगी, जो उस व्यक्ति को संबोधित हो, जिसमें–

i. अनुच्छेद (4) द्वारा लागू किए गए आदेश 12 नियम 1 के प्रभाव का उल्लेख हो; तथा

*ii. यह बताया गया हो कि वह **प्रपत्र 10** में उपस्थिति दर्ज कर सकता है और यह भी स्पष्ट किया गया हो कि वह ऐसा किस प्रकार कर सकता है।"*

(जोर दिया गया)

66. आदेश 15 के नियम 3 के उप-नियम (2) में यह प्रावधान है कि जहाँ कोई प्रतिवादी किसी ऐसे व्यक्ति को, जो पहले से कार्यवाही का पक्षकार नहीं है, अपने प्रत्युत्तर-दावे में पक्षकार के रूप में जोड़ता है, तब ऐसे व्यक्ति को प्रत्युत्तर-दावे की तामील किए जाने की तिथि से, प्रत्युत्तर-दावे के विरुद्ध अपने प्रतिरक्षण के संबंध में तथा अन्य सभी मामलों में वही अधिकार प्राप्त होंगे, मानो प्रत्युत्तर-दावा करने वाले पक्षकार द्वारा उसे सामान्य विधि के अनुसार विधिवत् वादग्रस्त किया गया हो। आदेश 15 के नियम 3 के उप-नियम (4)(ख) में आगे यह भी निर्धारित किया गया है कि जहाँ ऐसा व्यक्ति पहले से वाद का पक्षकार नहीं है, परंतु प्रत्युत्तर-दावे में अतिरिक्त पक्षकार के रूप में जोड़ा गया है, वहाँ आगे की कार्यवाही इस प्रकार संचालित की जाएगी मानो प्रत्युत्तर-दावा करने वाला पक्षकार उस वाद में वादी हो और जिसके विरुद्ध प्रत्युत्तर-दावा किया गया है वह उस वाद में प्रतिवादी हो। इन उपबंधों के संयुक्त पाठ से यह स्पष्ट होता है कि जिस व्यक्ति को बाद के चरण में प्रत्युत्तर-दावे में पक्षकार के रूप में जोड़ा जाता है, उसके संदर्भ में कार्यवाही को उस व्यक्ति पर प्रत्युत्तर-दावे की तामील के साथ 'उत्पन्न' माना जाएगा। अतः, ऐसे व्यक्ति से, जिसे अब

प्रत्युत्तर-दावे में पक्षकार बनाया गया है, एस.आई.सी.सी. के अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार करने हेतु उसकी सहमति अपेक्षित होगी।

67. यदि वह पक्षकार, जिसे बाद में प्रत्युत्तर-दावे में पक्षकार बनाया गया है, एस.आई.सी.सी. के अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार नहीं करता है, तो एस.आई.सी.सी. को नियमों के आदेश 15 नियम 5 के अंतर्गत प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रत्युत्तर-दावे की पृथक सुनवाई का आदेश देना चाहिए, अथवा नियमों के आदेश 110 नियम 12(1क) के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उस वाद को सामान्य विभाग में स्थानांतरित कर सकता है। तत्संबंधी उपबंध, सुविधा की दृष्टि से, नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

> ***"न्यायालय पृथक विचारण आदि का आदेश दे सकता है (आदेश 15, नियम 5)***
> *5.-(1) यदि किसी वादी द्वारा एक ही मुकदमे में या किसी प्रतिवादी द्वारा प्रतिदावे में दो या दो से अधिक वाद कारणों से संबंधित दावे शामिल किए जाते हैं, या यदि दो या दो से अधिक वादी या प्रतिवादी एक ही मुकदमे में पक्षकार हैं, और न्यायालय को प्रतीत होता है कि वाद कारणों या पक्षकारों का संयोजन, जैसा भी मामला हो, मुकदमे की कार्यवाही में बाधा उत्पन्न कर सकता है या विलंब कर सकता है या अन्यथा असुविधाजनक है, तो न्यायालय अलग-अलग मुकदमे चलाने का आदेश दे सकता है या ऐसा अन्य आदेश दे सकता है जो उचित हो।*

(2) यदि प्रत्युत्तर-दावे के विरुद्ध किसी पक्षकार के आवेदन पर यह प्रतीत हो कि प्रत्युत्तर-दावे की विषय-वस्तु को किसी भी कारण से पृथक वाद द्वारा निपटाया जाना चाहिए, तो न्यायालय प्रत्युत्तर-दावे को खारिज करने का आदेश दे सकता है या उसे पृथक रूप से विचारित किए जाने का आदेश दे सकता है अथवा ऐसा अन्य आदेश पारित कर सकता है जो उपयुक्त हो।

XXXXX

न्यायालय में या न्यायालय से कार्यवाही का हस्तांतरण (आदेश 110, नियम 12)

12.-(1) XXX

(1क) न्यायालय में आरंभ की गई कार्यवाही को सामान्य विभाग में स्थानांतरित किया जा सकता है।"

68. वर्तमान मामले में, विचाराधीन निर्णय में ही यह दर्ज है कि मूल दावा दिसंबर 2016 में सिंगापुर के उच्च न्यायालय में याचिकाकर्ता के विरुद्ध AKRO द्वारा दायर किया गया था। इसके पश्चात, कार्यवाही को एस.आई.सी.सी. में स्थानांतरित किया गया; जहाँ वादी को अपने प्रत्युत्तर-दावे में संशोधन करने की अनुमति दी गई ताकि AKRO और AKRO के दो निदेशक, AYBI एनर्जी *FZE*(AKRO से संबंधित एक कंपनी) और यहाँ के प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध *'धोखाधड़ी और साजिश'* से संबंधित दावे शामिल किए जा सकें। अतः,

यहाँ के प्रत्यर्थीगण ने न तो एस.आई.सी.सी. में उपस्थिति दर्ज कराई और न ही इसके अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार किया, और कार्यवाही एस.आई.सी.सी. में प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध *एक-पक्षीय* रूप में जारी रही, जिससे 31.05.2019 के एक-पक्षीय निर्णय परिपन्न हुआ, जिसके प्रवर्तन की याचना वादी द्वारा यहाँ की गई है।

69. जैसा कि उपरोक्त से स्पष्ट है, एस.आई.सी.सी. एस.सी. अधिनियम द्वारा निर्मित एक विशेष अधिकार-क्षेत्र है, जिसमें पक्षकारों को इसके अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत स्वीकार करना आवश्यक होता है। हालाँकि, प्रत्यर्थीगण ने एस.आई.सी.सी. के अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार नहीं किया है। वास्तव में, वे न तो सिंगापुर के उच्च न्यायालय और न ही सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत थे, क्योंकि वे सिंगापुर के निवासी नहीं हैं और न ही वे सिंगापुर में व्यवसाय चला रहे थे, और वाद हेतुक का कोई भाग सिंगापुर में उत्पन्न नहीं हुआ था। यह बात एस.आई.सी.सी. के निर्णय में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जिसमें वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को अनुमति प्रदान करते समय एस.आई.सी.सी. ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ की हैं:-

> *"48. जैसा कि ऊपर संदर्भित किया गया है, डीडीपीएल ने ऑफ़शोर निर्णय के लिए आवेदन किया क्योंकि आरएफएल केवल तभी कार्यवाही में उसके लिए उपस्थित हो सकता था जब यह एक 'ऑफ़शोर मामला' हो: लीगल प्रोफेशन एक्ट (कैप 161, 2009 पुनः संस्करण), धारा 360; लीगल प्रोफेशन (सिंगापुर*

*इंटरनेशनल कॉमर्शियल कोर्ट में प्रतिनिधित्व) नियम 2014 (कैप 161, एस 851), नियम 3(2)। 'ऑफ़शोर मामला' से तात्पर्य उस वाद से है जिसका सिंगापुर से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है। यदि सिंगापुर का कानून विवाद पर लागू नहीं होता और विवाद की विषय-वस्तु सिंगापुर कानून द्वारा विनियमित या अन्यथा उसके अधीन नहीं है, तो वह कार्यवाही ऑफ़शोर मामला मानी जाएगी: **कार्यवाही के नियम**, आदेश 110, नियम 1(2)(च)।*

*49 आवेदन के निर्धारण में ध्यान "विशिष्ट कार्यवाही" पर केंद्रित था: **टेरेस ऑफ़शोर** [10]। यह विशिष्ट कार्यवाही AKRO के बीच है, जो दुबई में पंजीकृत है, और डीडीपीएल के बीच, जो सिंगापुर में पंजीकृत है, जो भारत में पंजीकृत कंपनियों के समूह का हिस्सा है और दिल्ली, भारत में पंजीकृत एक कंपनी की पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी है।*

*50 कार्यवाही का **विषय रिग** संयुक्त राज्य अमेरिका के ह्यूस्टन, टेक्सास में मरम्मत और नवीनीकरण किया गया था। अनुबंध पर बातचीत ह्यूस्टन में 25 अक्टूबर 2015 से 28 अक्टूबर 2015 के बीच हुई। अनुबंध 4 नवंबर 2015 को दिल्ली, भारत में निष्पादित किया गया। अनुबंध का पालन टेक्सास में किया गया और उसके पश्चात टेक्सास से कॉर्पस क्रिस्टी, यूएस गल्फ ऑफ़ मेक्सिको, गुजरात, भारत और मुंबई, भारत के बीच किया गया।*

51 विवाद बहुआयामी है। AKRO द्वारा लाया गया दावा, जिसे खारिज कर दिया गया, उन अवैतनिक चालानों से संबंधित था जो कथित रूप से अनुबंध के निष्पादन के दौरान अमेरिका में और भारत की ओर

जाते समय और भारत में किए गए कार्यों के लिए थे। डीडीपीएल के AKRO, उसके निदेशकों, एवाईबीआई और डीडीपीएल के पूर्व प्रतिनिधिगण के खिलाफ दावे अमेरिका में कथित रूप से झूठे चालान बनाने से संबंधित हैं, जो कथित रूप से डीडीपीएल के पूर्व प्रतिनिधिगण द्वारा भारत में सहायता और सुविधा प्रदान करने के सेटिंग में किए गए थे। अधिकांश आचरण संयुक्त राज्य अमेरिका में और आंशिक रूप से भारत आने और जाने के रास्ते में हुआ। AKRO को किए गए भुगतान डीडीपीएल द्वारा उसके सिंगापुर कार्यालय के माध्यम से किए गए थे।

52 यह मानकर कि सिंगापुर का कानून विवाद के एक भाग पर लागू होता है (डीडीपीएल ने दुर्व्यपदेशन अधिनियम (कैप 390, 1994 संसोधित संस्करण) ("दुर्व्यपदेशन अधिनियम") के तहत वैकल्पिक दावा प्रस्तुत किया), यह विचार करना आवश्यक था कि क्या कार्यवाही का सिंगापुर से "कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं" है। यह तथ्य कि डीडीपीएल एक सिंगापुर कंपनी है, स्वयं में, या इसके कार्यालय के माध्यम से धन का भुगतान किया गया, यह निष्कर्ष निकालने का आधार नहीं है कि कार्यवाही या विवाद का सिंगापुर से कोई महत्वपूर्ण संबंध है: टेरेस ऑफ़शोर।

53 यह तथ्य कि अनुबंध सिंगापुर के बाहर बातचीत करके, निष्पादित और पूरा किया गया और विवाद का विषय उस कृत्य से संबंधित है जो सिंगापुर के बाहर हुआ, इस निष्कर्ष पर पहुँचने में निर्णायक थे

कि इस कार्यवाही का सिंगापुर से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं है।"

70. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, बिना प्रत्यर्थीगण की सहमति के, इसलिए, एस.आई.सी.सी. प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध अधिकार क्षेत्र ग्रहण नहीं कर सकता था।

71. नियमावली के आदेश 110 के नियम 10 के अंतर्गत एस.आई.सी.सी. पर भी यह दायित्व है कि वह अपनी स्वेच्छा से और किसी भी समय विचार करे कि क्या उसके पास अधिकार क्षेत्र है या उसे अधिकार क्षेत्र ग्रहण करने से इंकार करना चाहिए। वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थीगण को प्रतिवाद में पक्षकारों के रूप में जोड़े जाने के बाद, ऐसा प्रतीत होता नहीं कि एस.आई.सी.सी. ने ऐसा निर्णय लिया। नियमावली के आदेश 110 का नियम 10 यहाँ प्रस्तुत है:

"न्यायालय क्षेत्राधिकार और क्षेत्राधिकार की धारणा पर विचार कर सकता है (आदेश 110, नियम 10)

10 *-(1) न्यायालय में प्रारंभ की गई वाद कार्यवाही में, न्यायालय यह विचार कर सकता है कि उसके पास क्षेत्राधिकार है या उसे क्षेत्राधिकार धारण करने से विरत रहना चाहिए -*

(क) अपने स्वयं के आदेश पर किसी भी समय (परंतु पक्षकारों को सुनने से पूर्व कोई निर्णय नहीं देगा); या

(ख) किसी पक्षकार द्वारा नियम 11 के अनुसार प्रस्तुत आवेदन पर।

(2) [एस 697/2018 द्वारा 01/11/2018 से प्रभावी रूप से हटाया गया]

[(3) जहाँ न्यायालय यह निर्णय करता है कि उसके पास क्षेत्राधिकार नहीं है या वह क्षेत्राधिकार ग्रहण करने से विरत रहता है -

(क) न्यायालय को कार्यवाही को सामान्य विभाग में स्थानांतरित करना होगा यदि -

(i) न्यायालय यह मानता है कि मामले में सामान्य विभाग का क्षेत्राधिकार है; और

(ii) सभी पक्षकार इस बात के लिए सहमति देते हैं कि कार्यवाही सामान्य विभाग में सुनी जाए; या

(ख) यदि कार्यवाही उप-पैराग्राफ (क) के अंतर्गत सामान्य विभाग में स्थानांतरित नहीं की जाती है, तो न्यायालय कार्यवाही को खारिज कर सकता है या स्थगित कर सकता है, अथवा कोई अन्य आदेश पारित कर सकता है जिसे वह उपयुक्त समझे।

*(3क) अनुच्छेद (3)(क)(ii) के प्रयोजनों के लिए, जहाँ किसी न्यायालय चयन समझौते में उच्च न्यायालय या **सामान्य विभाग** को मामले के लिए न्यायालय के रूप में निर्दिष्ट किया गया है, वहाँ न्यायालय प्रत्येक समझौते के पक्षकार को ऐसा पक्षकार मानेगा जो कार्यवाही को सामान्य विभाग में सुने जाने के लिए सहमति देता है।*

(3ख) संदेह से बचने के लिए, अनुच्छेद (3)(ख) न्यायालय को सिंगापुर में किसी अन्य न्यायालय में कार्यवाही के स्थानांतरण का आदेश देने में सक्षम नहीं बनाता है।

(4) नियम 12(5) लागू होता है जहाँ न्यायालय अनुच्छेद (3)(क) के अंतर्गत कार्यवाही को स्थानांतरित करता है।

(5) इस नियम के अंतर्गत न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय अधिनियम की धारा 29(क) के प्रयोजनों के लिए अंतिम होंगे, जब तक कि अपील की अनुमति प्रदान न की जाए:

(क) यह निर्णय कि न्यायालय के पास क्षेत्राधिकार है और वह क्षेत्राधिकार ग्रहण करेगा;

(ख) अनुच्छेद (3)(a) के अंतर्गत कार्यवाही को सामान्य विभाग में स्थानांतरित करने का न्यायालय का निर्णय।

72. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा ***जेमिनी बे ट्रांसक्रिप्शन (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम इंटीग्रेटेड सेल्स सर्विस लिमिटेड***, (2022) 1 एससीसी 753 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर इस आधार पर निर्भरता कि यह न्यायालय यह प्रश्न नहीं उठा सकता कि क्या एस.आई.सी.सी. ने प्रत्यर्थीगण की सहमति के अभाव में याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर-दावे की सुनवाई हेतु अपना क्षेत्राधिकार प्रयोग किया होता, स्वीकार्य नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने ***जेमिनी बे ट्रांसक्रिप्शन (प्राइवेट) लिमिटेड*** (पूर्वोक्त) में मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 47 और 48 के अंतर्गत एक विदेशी अधिनिर्णय को चुनौती पर विचार किया था, जो स्वयं में एक पूर्ण संहिता है और मध्यस्थ अधिनिर्णय के विरुद्ध ऐसी चुनौती को निषिद्ध करता है। अतः यह आपत्ति,

जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(क) के अंतर्गत उठाई गई है, पर लागू नहीं होती।

73. मैं यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता हूँ कि इस न्यायालय को इस प्रकार नहीं पढ़ा जाना चाहिए कि प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर-दावे में प्रत्यर्थीगण के रूप में जोड़ा नहीं जा सकता था, बल्कि केवल यह कि प्रत्यर्थीगण की लिखित सहमति के अभाव में, एस.आई.सी.सी. अपने नियमों के अनुसार प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध प्रत्युत्तर-दावे का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार नहीं रखता था।

74. अतः, मेरे विचार में प्रत्यर्थीगण अधिनियम की धारा 13 के उपखंड (क) में प्रदत्त अपवाद को स्थापित करने में सक्षम रहे हैं, जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत विदेशी अधिनिर्णय, जिसे एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित किया गया है, के प्रवर्तन के विरुद्ध है।

ङ. <u>'वाणिज्यिक प्रकार के ना होने' का दावा</u>

75. प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा एस.आई.सी.सी. के समक्ष दायर प्रत्युत्तर-दावे 'कपट और षड्यंत्र' पर आधारित था। उनका कहना है कि याचिकाकर्ता की कार्यवाही, अतः, दायित्व पर आधारित थी और इसे 'वाणिज्यिक प्रकार का' नहीं कहा जा सकता, जो कि एस.आई.सी.सी. द्वारा क्षेत्राधिकार प्रयोग करने की पूर्व-आवश्यकता है।

76. मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की उक्त आपत्ति में भी सार पाता हूँ। एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित विषयगत निर्णय में यह दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ता का प्रत्युत्तर-दावे कपट और षड्यंत्र के आरोपों पर आधारित है। एस.आई.सी.सी. द्वारा क्षेत्राधिकार प्रयोग करने के लिए दावा 'अंतरराष्ट्रीय और वाणिज्यिक प्रकार का' होना आवश्यक है।

77. एस.सी. अधिनियम की धारा 18घ एस.आई.सी.सी. को उन विवादों का निर्णय करने का क्षेत्राधिकार प्रदान करती है जो 'अंतरराष्ट्रीय और वाणिज्यिक प्रकार के' हों।

78. नियम 110 के आदेश का नियम 9(3) यह भी अनिवार्य करता है कि जब किसी दावा या प्रत्युत्तर-दावे में पक्षकारों को जोड़े जाने के क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाए, तो एस.आई.सी.सी. को उसके अंतरराष्ट्रीय और वाणिज्यिक स्वरूप का ध्यान रखना होगा।

79. नियम 110 के आदेश का नियम 1(2)(ख) यह परिभाषित करता है कि कब किसी दावे को 'वाणिज्यिक प्रकार का' कहा जा सकता है। वही यहाँ पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

> *— **व्याख्या (आदेश 110, नियम 1)***
>
> XXXXX
>
> *(2) इस आदेश में, जब तक कि संदर्भ अन्यथा आवश्यक न हो -*

XXXXX

(ख) दावा वाणिज्यिक प्रकार का है यदि-

(i) दावे का विषय वाणिज्यिक प्रकार के संबंध से उत्पन्न होता है, चाहे वह संविदात्मक हो या न हो, जिसमें (परंतु केवल इन्हीं तक सीमित नहीं) निम्नलिखित लेन-देन सम्मिलित हैं:

(क) वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति या विनिमय हेतु कोई व्यापारिक लेन-देन;

(ख) वितरण समझौता;

(ग) वाणिज्यिक प्रतिनिधित्व या अभिकरण;

(घ) फैक्टरिंग या पट्टे पर देना;

(ड) निर्माण कार्य;

(च) परामर्श, अभियांत्रिकी या लाइसेंसिंग;

(छ) निवेश, वित्तपोषण, बैंकिंग या बीमा;

(ज) शोषण समझौता या रियायत;

(झ) संयुक्त उद्यम या औद्योगिक अथवा व्यावसायिक सहयोग का कोई अन्य रूप;

(ञ) कंपनियों का विलय या एक या अधिक कंपनियों का अधिग्रहण;

(ट) वायु, समुद्र, रेल या सड़क द्वारा माल या यात्रियों का परिवहन;

(i) दावा एक मुकदमे में से बौद्धिक संपदा विवाद से संबंधित है; या

(iii) दावे के पक्षकार इस बात पर स्पष्ट रूप से सहमत हुए हैं कि दावे का विषय वाणिज्यिक प्रकार का है।

80. उपरोक्त का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि दावे का विषय वाणिज्यिक प्रकार के संबंध से उत्पन्न होना चाहिए। वर्तमान मामले में,

याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थीगण के बीच ऐसा कोई संबंध नहीं था। वास्तव में, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, दावे का विषय प्रत्यर्थीगण द्वारा कथित न्यासीय कर्तव्यों का उल्लंघन था; एक दायित्व पर आधारित कार्यवाही; तथा कपट पर आधारित कार्यवाही।

81. इसलिए, अन्यथा भी, एस.आई.सी.सी. के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं था और वह याचिकाकर्ता तथा प्रत्यर्थीगण के बीच विवाद का निर्णय करने के लिए सक्षम नहीं था।

82. वर्तमान मामला, इसलिए, इस आधार पर भी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(क) में प्रदत्त अपवाद के अंतर्गत आता है, और एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित निर्णय निर्णायक नहीं है तथा, परिणामस्वरूप, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अंतर्गत प्रवर्तनीय नहीं है।

च. <u>एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित निर्णय मामले के गुणागुण पर नहीं दिया गया था।</u>

83. प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित विषयगत निर्णय को इस आधार पर चुनौती दी है कि उक्त निर्णय मामले के गुणागुण पर नहीं दिया गया था, और याचिकाकर्ता केवल इसलिए सफल हुआ क्योंकि प्रत्यर्थीगण एस.आई.सी.सी. के समक्ष उपस्थित नहीं हुए तथा कार्यवाही एक पक्षीय रूप से संचालित की गई।

84. तथापि, मैं उक्त प्रस्तुति में कोई बल नहीं पाता।

85. ***इंटरनेशनल वूलन मिल्स बनाम स्टैंडर्ड वूल (यूके) लिमिटेड*** (2001) 5 एस.सी.सी. 265 में उच्चतम न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि किसी विदेशी निर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के अंतर्गत निर्णायक और "गुणागुण पर आधारित" माने जाने हेतु यह देखना आवश्यक है कि निर्णय पारित करने वाले न्यायालय ने गंभीरता से विचार किया है और पक्षकारों के बीच उठे प्रश्नों पर विचार करने हेतु साक्ष्यों का परीक्षण किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि यदि कार्यवाही एक पक्षीय रूप से होती है, तो केवल तभी निर्णय गुणागुण पर आधारित माना जाएगा जब निर्णय पारित करने वाले न्यायालय ने साक्ष्यों का परीक्षण किया हो और वादी के दावों की सत्यता पर विचार किया हो। किंतु यदि निर्णय केवल प्रतिवादी की अनुपस्थिति या चूक के कारण पारित किया गया हो, बिना किसी साक्ष्य का मूल्यांकन किए या यह विचार किए कि दावा उचित है या नहीं, तो ऐसा निर्णय प्रतिवादी के विरुद्ध दंडस्वरूप माना जाएगा और गुणागुण पर आधारित निर्णय नहीं माना जाएगा। इस प्रकार, न्यायालय ने स्पष्ट किया कि "गुणागुण के आधार पर" का अर्थ केवल उपस्थिति या अनुपस्थिति पर आधारित नहीं है, बल्कि यह इस बात पर निर्भर करता है कि न्यायालय ने वास्तव में साक्ष्यों और दावों की जांच की है या नहीं।

> *"29. गोविंदन असारी-केसवन असारी बनाम शंकरन असारी बालकृष्णन असारी [ए.आई.आर. 1958 केर 203:1957 केर एल.टी. 1122:1957 केर एल.जे.*

999] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित प्रतिपादित किया है (ए.आई.आर. पृष्ठ. 205-06, पैरा 3):

"भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 की व्याख्या करते समय हमें उस धारा में प्रयुक्त शब्दों और अभिव्यक्तियों के सामान्य अर्थ पर ही ध्यान देना चाहिए, न कि अन्य बाहरी विचारों पर। धारा में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि 'गुणागुण पर आधारित निर्णय' का प्रयोग किसी औपचारिक विषय पर दिए गए निर्णय या दंडस्वरूप दिए गए निर्णय के विपरीत अर्थ में किया गया है।

धारा यह निर्धारित करती है कि किसी विदेशी निर्णय को भारतीय न्यायालय द्वारा पक्षकारों के बीच निर्णायक रूप से स्वीकार किए जाने के लिए किन शर्तों का पालन होना आवश्यक है। इनमें से एक शर्त यह है कि निर्णय मामले के गुणागुण पर दिया गया हो। यह भी आवश्यक है कि निर्णय के गुणागुण पर आधारित होने की स्थिति स्वयं निर्णय से स्पष्ट हो। केवल विदेशी न्यायालय द्वारा पारित कोई डिक्री या आदेश पर्याप्त नहीं है। वास्तव में, 'डिक्री' शब्द का उल्लेख धारा में कहीं नहीं किया गया है। आवश्यक यह है कि एक निर्णय दिया गया हो। उस निर्णय का स्वरूप भी धारा के प्रारंभिक भाग में इंगित किया गया है, जहाँ कहा गया है कि निर्णय को पक्षकारों के बीच उत्पन्न प्रश्नों पर प्रत्यक्ष रूप से विचार करना चाहिए।

न्यायालय को उस विषय पर गंभीरता से विचार करना चाहिए और उपलब्ध कराए गए साक्ष्यों पर विचार करना चाहिए ताकि यह कहा जा सके कि

मामले के गुणागुण पर निर्णय किया गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि गुणागुण पर आधारित निर्णय केवल उन्हीं मामलों में संभव है जहाँ प्रतिवादी उपस्थित होकर वादी के दावे का प्रतिवाद करता है। यहाँ तक कि जब प्रतिवादी एक पक्षीय रहने और कार्यवाही से बाहर रहने का विकल्प चुनता है, तब भी वादी अपने दावे के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है (और ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने पर भारत में न्यायालय सामान्यतः जोर देते हैं), ताकि न्यायालय उन साक्ष्यों पर विधिवत विचार करने के बाद मामले के गुणागुण पर निर्णय दे सके, बजाय इसके कि ऐसे विचार को दरकिनार कर केवल प्रतिवादी की अनुपस्थिति के कारण एक डिक्री पारित कर दे।

पूर्ववर्ती स्थिति में निर्णय मामले के गुणागुण पर आधारित माना जाएगा, जबकि उत्तरवर्ती स्थिति में निर्णय गुणागुण पर आधारित नहीं माना जाएगा। अतः यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी की अनुपस्थिति मात्र से निर्णय की प्रकार का निर्धारण नहीं किया जा सकता। यही कारण प्रतीत होता है कि धारा 13 में एकपक्षीय निर्णयों को अलग श्रेणी के रूप में नहीं दर्शाया गया है। किसी विदेशी न्यायालय की अपनी विशेष प्रक्रिया हो सकती है, जिसके अंतर्गत वह प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णय पारित कर सकता है, भले ही उसे समन देने के बावजूद और वह उपस्थित न हुआ हो, तथा वादी के पक्ष में निर्णय दे सकता है, यहाँ तक कि बिना वादी के दावे के समर्थन में किसी साक्ष्य पर जोर दिए हुए भी।

ऐसा निर्णय संबंधित क्षेत्राधिकार में पक्षकारों के बीच निर्णायक हो सकता है, किन्तु भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के प्रयोजन हेतु ऐसा निर्णय मामले के गुणागुण पर दिया गया नहीं माना जा सकता। इस सीमा तक भारत का विधि अन्य न्यायक्षेत्रों से भिन्न है, जहाँ प्रतिवादी की अनुपस्थिति के कारण पारित विदेशी निर्णयों को भी पक्षकारों के बीच अंतिम और निर्णायक माना जाता है। इस स्थिति को आर.ई. मोहम्मद कासिम एंड कंपनी बनाम सीनी पाकिर-बिन अहमद [ए.आई.आर. 1927 मैड 265:आई.एल.आर. 50 मैड 261 (एफ.बी.)] में देखा और स्वीकार किया गया था। यह तर्क कि प्रतिवादी, जिसने ***एकपक्षीय*** *रहने का विकल्प चुना, को वादी के दावे को स्वीकार कर लिया हुआ माना जाना चाहिए, उस मामले में असंगत और अस्थिर ठहराया गया। प्रतिवादी की अनुपस्थिति का अर्थ केवल इतना है कि वह दावा का प्रतिवाद करने या उसे स्वीकार करने के लिए आगे आने का इच्छुक नहीं है।*

उसका रवैया उस मामले में उदासीनता का हो सकता है, जिससे यह ज़िम्मेदारी वादी पर आ जाती है कि यदि वह अपने पक्ष में डिक्री चाहता है तो अपने दावे को सिद्ध करे। प्रतिवादी की ऐसी उदासीनता से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उसने वादी के दावे को स्वीकार कर लिया है। दावे की स्वीकृति एक सकारात्मक क्रिया है और इसे संबंधित व्यक्ति के किसी नकारात्मक या उदासीन रवैये से नहीं निकाला जा सकता। केवल प्रतिवादी की अनुपस्थिति के कारण, बिना यह विचार किए कि

दावा उचित है या नहीं और क्या उसे समर्थन देने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध है या नहीं, वादी के पक्ष में डिक्री पारित करना केवल यह दर्शाता है कि ऐसी डिक्री प्रतिवादी के विरुद्ध दंडस्वरूप दी गई है।

यह निर्णय दावे के गुणागुण पर आधारित निर्णय की न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं करता। इन आवश्यकताओं को अब्दुल रहमान बनाम मोहम्मद अली रोथर [ए.आई.आर. 1928 रंग 319:आई.एल.आर. 6 रंग 552] में निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया है:

> *'गुणागुण पर आधारित निर्णय का अर्थ है कि न्यायालय ने वादी के मामले की सत्यता या असत्यता पर अपना गंभीरता से विचार किया हो। अतः यदि साक्ष्य लेकर विषय पर न्यायिक विचार के बाद निर्णय दिया गया हो, तो वह **एकपक्षीय** होने पर भी गुणागुण पर आधारित माना जाएगा। किंतु यदि कोई निर्णय बिना किसी प्रकार के साक्ष्य के केवल वादी की **याचिका** के आधार पर दिया गया हो, तो उसे गुणागुण पर आधारित निर्णय नहीं माना जा सकता।'*

*पटना उच्च न्यायालय ने भी वजीर साहू बनाम मुंशी दास [ए.आई.आर. 1941 पैट 109:आई.एल.आर. 20 पैट 144] में यही दृष्टिकोण अपनाया। वहाँ यह प्रश्न उठाया गया कि कब एक **एकपक्षीय** निर्णय को मामले के गुणागुण पर आधारित कहा जा सकता है। इस प्रश्न का उत्तर न्यायालय ने इस प्रकार दिया:*

*'एक **एकपक्षीय** निर्णय गुणागुण पर आधारित हो भी सकता है और नहीं भी। केवल **एकपक्षीय** होने का तथ्य यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि निर्णय गुणागुण पर आधारित नहीं है। यही वास्तविक कसौटी नहीं है। वास्तविक कसौटी यह है कि निर्णय केवल औपचारिक रूप से, सामान्य प्रक्रिया के तहत या दंडस्वरूप पारित किया गया है, या फिर वह वादी के दावे की सत्यता अथवा असत्यता पर विचार करके दिया गया है।'*

हम इन दोनों मामलों में अपनाए गए दृष्टिकोण से आदरपूर्वक सहमत हैं।"

*30. हमारे विचार में यह **प्राधिकरण** सही विधि को प्रतिपादित करता है।"*

86. 31.05.2019 को एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित उस निर्णय का अवलोकन, जिसका प्रवर्तन याचिकाकर्ता द्वारा माँगा गया है, यह दर्शाता है कि एस.आई.सी.सी. ने याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध प्रस्तुत की गई दलीलों को दर्ज किया और तत्पश्चात याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर, उसके दावों की सत्यता का मूल्यांकन करते हुए अपना निर्णय दिया। यद्यपि कार्यवाही प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध *एकपक्षीय* रूप से संचालित हुई थी, फिर भी एस.आई.सी.सी. ने केवल औपचारिक आदेश पारित नहीं किया और न ही अनुपस्थिति को दंडस्वरूप मानकर निर्णय दिया। इसके विपरीत, न्यायालय ने साक्ष्य प्रस्तुत करने को कहा, उनकी सत्यता की जाँच की और प्रस्तुत सामग्री पर विधिवत विचार करने के बाद अपने निष्कर्ष पर पहुँचा। अतः

यह निर्णय भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(ख) के अंतर्गत "गुणागुण पर आधारित निर्णय" की कसौटी को पूरा करता है।

87. इसके अतिरिक्त, यह सुव्यवस्थित विधि है कि इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस बात का निर्णय करने का नहीं है कि विदेशी न्यायालय द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर दिया गया निर्णय सही है या नहीं। सी.पी.सी. की धारा 44क के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए या सी.पी.सी. की धारा13(ख) के तहत विवादित निर्णय को चुनौती देने पर विचार करते हुए विवादित निर्णय पर अपील करना इस न्यायालय का काम नहीं है। इस न्यायालय को साक्ष्यों की पर्याप्तता की जाँच करने का अधिकार नहीं है, केवल इस बहाने से कि यह निर्धारित किया जाए कि विषयगत निर्णय गुणागुण पर आधारित था या नहीं।

88. अतः प्रत्यर्थीगण द्वारा भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(ख) का हवाला देकर एस.आई.सी.सी. के निर्णय को दी गई चुनौती अस्वीकार की जाती है।

छ. <u>प्रत्यर्थीगण पर समन के अनुचित तामिल ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया।</u>

89. अब मैं भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(घ) के अंतर्गत प्रत्यर्थीगण द्वारा दी गई चुनौती पर आता हूँ, जिसमें कहा गया है कि उन्हें

प्रत्युत्तर-दावे की सूचना भारत के विधि के अनुसार नहीं दी गई और इस प्रकार उन्हें नैसर्गिक न्याय के अधिकार से वंचित कर दिया गया।

90. वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थीगण की ओर से यह प्रस्तुत किया है कि भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 29 तथा भारत सरकार द्वारा 29.05.1956 को जारी राजपत्र अधिसूचना के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर-दावे पर एस.आई.सी.सी. द्वारा जारी किए गए समन को प्रत्यर्थीगण पर इस प्रकार तामील किया जाना था मानो वे भारत के न्यायालय द्वारा जारी किए गए समन हों। सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश V वाद में समन जारी करने और उसकी तामील की प्रक्रिया प्रदान करता है। आदेश V का नियम 16 यह कहता है कि समन की प्रति देने वाला अधिकारी, जिस व्यक्ति को प्रति दी या प्रस्तुत की गई है, उससे तामील की स्वीकृति के रूप में हस्ताक्षर प्राप्त करेगा। आदेश V का नियम 19 यह और भी प्रावधान करता है कि सेवा अधिकारी की शपथ पर परीक्षा की जाए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि सेवा विधिवत की गई है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि सिंगापुर के न्यायालय के नियमों के अनुसार, जहाँ प्रतिवादी सिंगापुर की सीमा से बाहर स्थित है, वहाँ ऐसे प्रतिवादी पर समन के तामील के लिए उस देश के नियम लागू होंगे जहाँ वह प्रतिवादी निवास करता है। उन्होंने कहा कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता ने यह आरोप लगाया है कि एस.आई.सी.सी. द्वारा जारी समन प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा तामील किए गए। उन्होंने यह तर्क दिया कि

सिविल प्रक्रिया संहिता की दृष्टि से यह उचित तामील नहीं था और इसलिए एस.आई.सी.सी. द्वारा पारित निर्णय को निष्पादित नहीं किया जा सकता।

91. दूसरी ओर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थीगण को एस.आई.सी.सी. द्वारा जारी किए गए समन विधिवत तामील किए गए थे और इस संबंध में एक शपथपत्र एस.आई.सी.सी. के समक्ष दाखिल किया गया था, जिसे एस.आई.सी.सी. ने विधिवत तामील के रूप में स्वीकार किया। इसके बाद ही एस.आई.सी.सी. ने प्रत्युत्तर-दावे की कार्यवाही आगे बढ़ाई, जबकि प्रत्यर्थीगण समन के तामील के बावजूद उपस्थित नहीं हुए।

92. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थीगण को न केवल एस.आई.सी.सी. द्वारा जारी किए गए समन के तामील की गई थी, बल्कि याचिकाकर्ता द्वारा एस.आई.सी.सी. के समक्ष की गई प्रत्येक फाइलिंग से संबंधित ई-मेल में भी उन्हें चिह्नित किया गया था। उन्होंने कहा कि इसलिए प्रत्यर्थीगण को एस.आई.सी.सी. के समक्ष चल रही कार्यवाही की पूरी जानकारी थी और उन्होंने जानबूझकर एस.आई.सी.सी. के समक्ष उपस्थित होने से परहेज़ किया।

93. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ***आर. विश्वनाथन बनाम रुकन-उल-मुल्क सैयद अब्दुल वाजिद,*** 1962 एससीसी ऑनलाइन एससी 112 पर भरोसा करते हुए उन्होंने प्रस्तुत किया कि समन का तामील विधिवत रूप से निर्णय-ऋणी पर किया गया था या नहीं, यह विचार करने का अधिकार एस.आई.सी.सी. का है,

न कि इस न्यायालय का, जब यह न्यायालय भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा हो।

94. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों पर विचार किया है।

95. भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(घ) यह कहती है कि कोई विदेशी निर्णय उन सभी विषयों पर निर्णायक होगा जिन पर पक्षकारों के बीच प्रत्यक्ष रूप से निर्णय दिया गया है, सिवाय उन परिस्थितियों के जहाँ वह निर्णय प्राप्त करने की कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के विपरीत हो। नैसर्गिक न्याय को केवल समन के तामील की किसी विशेष प्रक्रिया संबंधी आवश्यकता के साथ समान नहीं माना जा सकता। यद्यपि यह मान भी लिया जाए कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थीगण पर समन के तामील के प्रमाण में कुछ प्रक्रियागत त्रुटियाँ थीं, फिर भी इसे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के समान नहीं माना जा सकता। प्रत्यर्थीगण ने यह नहीं कहा है कि उन्हें याचिकाकर्ता द्वारा उनके विरुद्ध दायर प्रत्युत्तर-दावे या उस पर एस.आई.सी.सी. द्वारा संचालित कार्यवाही की जानकारी नहीं थी। उन्होंने केवल यह दलील दी है कि उन पर समन के विधिवत तामील का प्रमाण उपलब्ध नहीं है। प्रक्रियात्मक विधि मूल अधिकारों पर हावी नहीं हो सकती। ***आर. विश्वनाथन*** *(पूर्वोक्त)* में सर्वोच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(घ) के अंतर्गत इसके क्षेत्र और परिधि को इस प्रकार स्पष्ट किया है:-

*"**30.** ... "विदेशी न्यायालय की क्षमता का निर्णय करते समय हमारे लिए यह संभव नहीं होगा कि हम उस न्यायालय की प्रचलित प्रक्रिया की उपेक्षा करें, भले ही वह उस राज्य के प्रक्रियात्मक कानून द्वारा सख्ती से अनुमोदित न हो। विदेशी न्यायालय की वह प्रक्रिया, जो नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन नहीं करती, वैध है या नहीं–यह निर्णय विदेशी न्यायालय का है, न कि उस न्यायालय का जिसमें विदेशी निर्णय को निर्णायक रूप से प्रस्तुत किया गया है।"...*

XXXXX

40.** इस वाद में प्रस्तुत की गई दलीलों पर विचार करने से पहले यह आवश्यक है कि हम कार्यपालकों द्वारा उठाई गई उस दलील का निपटान करें कि वादीगण को इस वाद में न्यायपीठ का गठन करने वाले न्यायाधीशों के पक्षपात, पूर्वाग्रह, प्रतिशोध या स्वार्थ के संबंध में कोई दलील उठाने की अनुमति नहीं है। उन्होंने यह प्रस्तुत किया कि निजी अंतरराष्ट्रीय विधि (के हाल के विकास की प्रवृतियों के अनुसार, यह दलील कि कोई विदेशी निर्णय नैसर्गिक न्याय के विपरीत है, तभी स्वीकार्य होगी जब वह पक्ष जिसने यह दलील उठाई है, को विधिवत समन के* तामील *नहीं की गई हो या उसे सुने जाने का अवसर नहीं दिया गया हो। उस दलील के समर्थन में* ***कार्यपालकों *के विद्वान अधिवक्ता ने डाइसी कॉन्फ्लिक्ट ऑफ़ लॉज़, 7वाँ संस्करण, नियम 186, पृष्ठ 1010-11 में संपादकों द्वारा किए गए कथन पर भरोसा किया और यह प्रस्तुत किया कि*

कोई विदेशी निर्णय केवल क्षमता की कमी के आधार पर चुनौती योग्य है, न कि इस आधार पर कि वह निर्णय इसलिए दूषित है क्योंकि उस निर्णय तक पहुँचने वाली कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के विपरीत संचालित की गई थी। इसके अतिरिक्त प्राइवेट इंटरनेशनल लॉ में चेशायर द्वारा किए गए कथन, 6वाँ संस्करण, पृष्ठ 675 से 677 पर भी भरोसा किया गया:

"नैसर्गिक न्याय के विपरीत' अभिव्यक्ति, हालांकि, न्यायिक वक्तव्यों में इतनी प्रमुखता से दिखाई देती है कि यह आवश्यक हो जाता है कि यदि संभव हो तो इसकी सटीक सीमा निर्धारित की जाए। केवल यही कथन किसी हद तक सटीकता के साथ किया जा सकता है कि वर्तमान संदर्भ में यह अभिव्यक्ति विदेशी कानून के प्रक्रियात्मक नियमों में किसी स्पष्ट दोष के लिए सीमित है। जैसा कि डेनमैन, मु.न्या., ने एक प्रारंभिक मामले में कहा:
'यह कभी अनुमान नहीं लगाया जाता कि अन्याय हुआ है, जब तक कि हमें स्पष्ट रूप से यह न दिखे कि विदेशी विधि, या कम से कम विदेशी न्यायालय की कुछ कार्यवाहियाँ, नैसर्गिक न्याय के प्रतिकूल हैं; और यह विषय हमारे न्यायालयों में अक्सर जाँच का विषय रहा है।'

अन्य शब्दों में, न्यायालय इस बात पर सतर्क रहते हैं कि प्रतिवादी को अपने पक्ष प्रस्तुत करने के अवसर से वंचित न किया जाए। ऑडी अल्टरम पार्टेम का यह विचारशील सिद्धांत सार्वभौमिक माना जाता है, केवल घरेलू अनुप्रयोग तक सीमित नहीं।

वास्तव में समस्या दो स्थितियों तक सीमित हो गई है।

> *पहली स्थिति यह है कि अनुपस्थित प्रतिवादीगण पर अधिकार-क्षेत्र मान लिया जाए। दूसरी स्थिति यह है कि यदि कोई वादी कार्यवाही में उपस्थित होते हुए भी अपने मामले को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने में अनुचित रूप से बाधित या प्रभावित किया गया हो, तो यह नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन है।*

यह विचार करना आवश्यक नहीं है कि जिन उद्धरणों पर भरोसा किया गया है वे सुझाई गई व्याख्या के लिए उपयुक्त हैं या नहीं, क्योंकि निजी अंतरराष्ट्रीय विधि केवल उस राज्य के नगरपालिका विधि की एक शाखा है, जिसमें वह न्यायालय कार्य करता है जिसे विदेशी निर्णय को प्रभावी बनाने के लिए कहा गया है। और भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता, अधिनियम संख्या 5, 1908 की धारा 13 के अनुसार, यदि वह कार्यवाही जिसमें विदेशी निर्णय प्राप्त किया गया है नैसर्गिक न्याय के विपरीत है, तो ऐसा विदेशी निर्णय निर्णायक नहीं माना जाएगा। चाहे इंग्लैंड या अन्यत्र नैसर्गिक न्याय से संबंधित निजी अंतरराष्ट्रीय विधि का नियम किसी भी रूप में हो (और इस तर्क के प्रयोजन हेतु हम मान लेते हैं कि अन्य न्यायक्षेत्रों में यह दलील कि कोई विदेशी निर्णय नैसर्गिक न्याय के विपरीत है, अब केवल दो आधारों तक सीमित है–समुचित सूचना का अभाव और पक्षकार को अपना मामला प्रस्तुत करने का अवसर न दिया जाना), फिर भी इस दलील पर भारत के वैधानिक विधि के आलोक में विचार किया

जाना चाहिए। और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो सुझाई गई सीमा का समर्थन करता हो।

41. *भारतीय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के अनुसार कोई विदेशी निर्णय उन सभी विषयों पर निर्णायक माना जाता है जिन पर वही पक्षकारों के बीच प्रत्यक्ष रूप से निर्णय दिया गया हो। परंतु किसी न्यायालय के निर्णय का सार यह है कि वह न्यायिक प्रक्रिया का विधिवत पालन करने के बाद ही प्राप्त होना चाहिए। अर्थात्, निर्णय देने वाला न्यायालय नैसर्गिक न्याय की न्यूनतम आवश्यकताओं का पालन करे – न्यायालय निष्पक्ष व्यक्तियों से गठित हो, वे निष्पक्षता से, पक्षपात से परे सद्भावना सहित कार्य करें, विवाद में सम्मिलित पक्षकारों को उचित सूचना दें और प्रत्येक पक्ष को अपना मामला प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर प्रदान करें। किसी सक्षम विदेशी न्यायालय का निर्णय निर्णायक माना जाएगा, भले ही वह साक्ष्य या विधि की त्रुटिपूर्ण व्याख्या पर आधारित हो, यदि न्यायिक प्रक्रिया की न्यूनतम आवश्यकताओं का पालन सुनिश्चित किया गया हो। विधि या साक्ष्य के आधार पर निर्णय की शुद्धता को नगरपालिका न्यायालय द्वारा उसकी निर्णायकता को मान्यता देने की शर्त नहीं माना जाता। न ही विदेशी प्रकरण का सारभूत विधि , और न ही उसकी प्रक्रियात्मक विधि , नगरपालिका न्यायालय की विधि के समान या मिलती-जुलती होना आवश्यक है। जैसा कि न्यायमूर्ति चारवेल ने रॉबिन्सन बनाम फेनर*

[(1913) 3 केबी 835, पृष्ठ 842] में कहा था। "किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह निर्णय हमारे विधि के अनुसार स्पष्ट रूप से गलत प्रतीत होता है, परंतु यह पर्याप्त नहीं है : गोडार्ड बनाम ग्रे [(1870) एलआर 6 क्यूबी 139]। और 'नैसर्गिक न्याय के विपरीत' अभिव्यक्ति, जो अनेक मामलों में प्रयुक्त हुई है, का अर्थ वास्तव में बहुत कम प्राधिकारों द्वारा स्पष्ट किया गया है। मेरा विचार है कि केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि कोई निर्णय बहुत गलत है, जैसे कि केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि वह गलत है। इसलिए यह कहना पर्याप्त नहीं है कि परिणाम किसी विशेष मामले में अन्याय करता है, क्योंकि एक गलत निर्णय हमेशा ऐसा करता है। किसी निर्णय को निर्णायक नहीं माना जाएगा यदि वह कार्यवाही जिसमें वह प्राप्त किया गया है नैसर्गिक न्याय के विपरीत हो। विधि के शब्द स्पष्ट करते हैं कि खंड 13(घ) के अंतर्गत किसी निर्णय को निर्णायकता के नियम से बाहर करने के लिए आवश्यक है कि उसकी प्रक्रिया नैसर्गिक न्याय के विपरीत हो। यदि कोई निर्णय न्यायाधीश के पक्षपात या निष्पक्षता की कमी का परिणाम है, तो उसे शून्य माना जाएगा और वह "ट्रायल कोरम नॉन ज्यूडिस" कहलाएगा (वसीलाडेस बनाम वासीलाडेस [एआईआर 1945 पीसी 38 पर 40] तथा माणिक लाल बनाम डॉ प्रेम चंद [(1957) एससीआर 575])।

96. अतः, यदि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकताओं का पालन किया गया है, तो समन की तामील में कोई मात्र प्रक्रियात्मक अनियमितता,

यदि हो भी, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के अंतर्गत विदेशी निर्णय की निष्कर्षात्मकता को प्रभावित नहीं करेगी।

97. परिणामस्वरूप, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(घ) के अंतर्गत एस.आई.सी.सी. के निर्णय को चुनौती देने संबंधी प्रत्यर्थीगण की आपत्ति अस्वीकार की जाती है।

<u>निष्कर्ष</u>

98. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय के निष्कर्षों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया हैः-

क) एस.आई.सी.सी. एक "न्यायालय" है, जैसा कि कानूनी भाषा में समझा जाता है।

ख) एस. आई. सी. सी., सिंगापुर उच्च न्यायालय का एक विभाग होने के नाते, सी. पी. सी. की खंड 44क के तहत एक "वरिष्ठ न्यायालय" के रूप में अर्हता प्राप्त करता है;

ग) दिनांक 19.11.2019 का पत्राचार, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क(2) के अंतर्गत अपेक्षित प्रमाण-पत्र की आवश्यकता को पर्याप्त रूप से पूरा करता है।

घ) दिनांक 31.05.2019 का एस.आई.सी.सी. का निर्णय, जहाँ तक वह प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध है, सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा

पारित नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्रत्यर्थीगण ने विवाद के निर्णय हेतु एस.आई.सी.सी. को अधिकारिता प्रदान करने के लिए अपनी सहमति नहीं दी थी तथा दावा-विषय "वाणिज्यिक प्रकार" का न होकर प्रत्ययी कर्तव्यों के उल्लंघन एवं धोखाधड़ी के आरोपों पर आधारित अपकृत्य संबंधी कार्यवाही था। अतः, नियमों के अनुसार, एस.आई.सी.सी. को याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध दायर प्रत्युत्तर-दावे का निर्णय करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं थी। परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थीगण ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(क) को धारा 44क(3) के साथ पठित करते हुए, एस.आई.सी.सी. के दिनांक 31.05.2019 के निर्णय के अप्रवर्तन हेतु अपना मामला स्थापित कर दिया है।

ड.) एस.आई.सी.सी. का निर्णय याचिकाकर्ता द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त निर्णय गुणागुण के आधार पर नहीं दिया गया है। इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13(ख) के अंतर्गत कोई मामला स्थापित करने में असफल रहे हैं; तथा

च) एस.आई.सी.सी. के समक्ष हुई वह कार्यवाही, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 31.05.2019 का निर्णय पारित हुआ, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के प्रतिकूल नहीं कही जा सकती। अतः प्रत्यर्थीगण सिविल

प्रक्रिया संहिता की धारा 13(घ) के अंतर्गत भी कोई मामला स्थापित करने में सक्षम नहीं रहे हैं।

99. तदनुसार, वर्तमान निष्पादन याचिका को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अंतर्गत योग्य न होने के कारण खारिज किया जाता है, तथापि याचिकाकर्ता को विधि के अनुसार उपलब्ध इसके अन्य उपायों का सहारा लेने की स्वतंत्रता सुरक्षित रखी जाती है।

100. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

न्या. नवीन चावला

24 फरवरी, 2025/आर्य/आरवी/एसजे

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*